Musical Instrument & Indian Film Industry
ISBN: 978-81-947902-6-6

सितार की उत्पत्ति, विकास एवं हिन्दी फिल्म संगीत में भूमिका

वनिता
अससिस्टेंट प्रोफेसर
संगीत विभाग
पंजाबी विश्वविद्यालय
पटियाला, पंजाब, भारत

भारतीय संगीत, भारतीय संस्कृति और सभ्यता का प्रतीक है। कलाओं को प्राचीन समय से ही धार्मिक भावनाओं का प्रतीक माना गया है। इसलिए भारतीय वाद्यों को परमात्मा के साथ जोड़ा गया है। देवी–देवताओं को कोई न कोई वाद्य धारण किए दरशाया गया है। शिव जी के हाथ में डमरू, श्री गणेश के हाथ में मृदंग, सरस्वती जी के हाथ में वीणा, विष्णु जी के हाथ में शंख और श्री कृष्ण के हाथ में बांसुरी, जिस कारण भारतीय वादन परम्परा की पवित्रता दृष्टिगोचर होती है। किसी भी वाद्य का इतिहास किसी न किसी रूप में धार्मिक आस्थाओं के साथ जुड़ा हुआ मिलता है।

डॉ. अतुल कुमार गुप्ता के अनुसार, ''गायन, वादन, नृत्य इन तीनों कलाओं का अपना विशेष महत्व और प्रयोजन रहा है। वाद्यों की उत्पति वैदिक काल से पहले हो चुकी थी। पूजा और यज्ञ आदि में सामगान की परम्परा प्रचलित थी, जिन में वाद्यों का प्रयोग होता था। सामगान में तंत्री वाद्यों की अहम भूमिका थी।''[1]

Social Research Foundation

ISBN: 978-81-947902-6-6

वैदिक काल से ही वाद्यों की विकासशील यात्रा आरम्भ होती है ''संगीत रत्नाकर के अनुसार भी गीत की उत्पत्ति साज़ों द्वारा हुई है। श्रुति, मुर्छना इन सब के निर्माण के लिए तंत्री एवं सुषिर वाद्यों को ही आधार माना गया है। सही स्वर लगाओ, प्रमाणित करने के लिए वाद्य आवश्यक होते हैं।''[2] वाद्यों की स्वभाविक मधुरता, गायन का अभ्यास करने और कंठ में सुरीलापन लाने के लिए पूर्ण रूप से सहायक होती है, जिससे वाद्यों का महत्व और भी बढ़ जाता है।

वाद्य शब्द का अर्थ

वाद्य वह उपकरण है, जिसमें मानवी मनोभावनाओं की अभिव्यक्ति करने की समरथा होती है। वह उपकरण, जिस में संगीत उपयोगी ध्वनि उत्पन्न की जा सकती हो, संगीतक वाद्य कहलाता है।

डॉ. लाल मणी मिश्र के अनुसार, ''संगीत उपयोगी धुन और गीत प्रगट करने वाले उपकरण को साज़/वाद्य कहते हैं।''[3]

उपरोक्त धारणा को सही मानते हुए डॉ. इन्द्राणी चक्रवर्ती के अनुसार, ''वाद्य शब्द वद धातु से बना हुआ है, जिस का अर्थ है, बुलाया जा सके। भाव मनुष्य अपने शरीर से नाद उत्पन्न न करके, जिस यंत्र के साथ नाद उत्पन्न कर सके, वह वाद्य है।''[4]

वाद्य की उत्पत्ति

प्राचीन ग्रन्थों अथवा शास्त्रों के अनुसार वाद्यों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में कई रोचक प्रसंग एवं मत प्राप्त होते हैं। कुछ विद्ववानों के अनुसार बांसुरी सब से प्राचीन वाद्य है। जंगलों में रहते मानव ने बांस के सुराखों में से निकली ध्वनि जो कि बहुत मधुर प्रतीत हुई, उस के आधार पर बांसुरी का निर्माण हुआ।''धार्मिक धारणा है कि तंत्री वाद्यों के आधार पर वाद्य वीणा का निर्माण शिव जी ने पार्वती जी की नींद के बीच की मुद्रा के आधार पर किया, उस का नाम रूद्र वीणा था।''[5]

Social Research Foundation

कहा जाता है कि 'रूद्र' शिव जी का ही एक नाम है। जब मानव जाती का सृष्टि में आगमन हुआ, उससे पहले पुरा ब्रहमांड लयबध था। इस के इलावा मानव दिल की धड़कन, पैरों की चाल, दोनों हाथों से ताली बजाना इत्यादि क्रियाओं से निश्चित रूप में ताल वाद्य ही सबसे पहला निर्मित वाद्य हुआ होगा।

कौन से वाद्यों की उत्पति कब और कैसे हुई, इस बारे में कुछ भी प्रमाणित रूप में नहीं कहा जा सकता पर संगीत विद्ववानों के सूक्ष्म अध्ययन, आपसी विचार और प्राचीन शास्त्रों के आधार पर विभिन्न विचार दृष्टिगोचर होते हैं।

संगीत के आरम्भिक समय से ही वाद्यों का महत्व रहा है। संगीत शास्त्रों में शास्त्रकारों ने वाद्यों का विभिन्न श्रेणियों में वर्गीकरण किया है। शोध पत्र के विषय के अनुसार तंत्री वाद्य सितार को केन्द्र मानकर चर्चा की जाएगी।

तंत्री वाद्य

तंत्री वाद्य वह वाद्य है, जिन में तारों द्वारा ध्वनि पैदा की जा सकती है। तंत्री वाद्यों का आधार वीणा है। सब से पहले तंत्री वाद्य एक तंत्री वीणा मानी गई है। ठाकुर जैदेव सिंह के अनुसार, ''ऋग्वेद काल में प्रसिद्ध तंत्री वाद्य वाण अथवा बाण था।''[6]

डॉ. अतुल कुमार गुप्ता के अनुसार, ''वाण का अर्थ है ''शब्द कहना''। तंत्री वाद्य को वाण इसलिए कहा गया है, क्योंकि उस में से ध्वनि निकलती है। संभावित है कि तीर को भी वाण/बाण इसलिए कहा गया होगा, तीर छोड़ते समय उसमें से सनऽऽऽ की धुन प्रकट होती है, जिसकी गूँज कुछ समय तक निरन्तर सुनाई देती है। इस के आधार पर तंत्री वाद्य को पहले वाण/बाण और फिर धीरे–धीरे वेणु नाम प्रचार में आया।''[7]

Social Research Foundation

जैसे कि उपरोक्त बताया गया है कि तंत्री वाद्यों का आधार वाद्य ''वीणा'' माना गया है। तंत्री वाद्य की उत्पत्ति के विषय में कई संभावित व्याख्याएं प्राप्त होती हैं, जिनमें से एक व्याख्या इस प्रकार है:

''बाण छोड़ते समय धनुष्य की डोरी में से धुन उत्पन्न हुई जो कानों को बहुत अच्छी लगी, जो कि संगीत उपयोगी प्रतीत हुई। धनुष की डोरी टूटने से डोरी की लंबाई छोटी होने से उसको दोबारा धनुष के साथ बांधकर छेड़ने से धुन पहली धुन से ऊँची प्रतीत हुई। इससे यह अनुभव हुआ कि डोरी की लंबाई बढ़ने–घटने से धुनी में परिवर्तन होता है, भाव स्वर ऊँचा–नीचा होता है। इस अनुभव से प्रेरित हो के धनुष की डोरी को छोटा–बड़ा करके भिन्न–भिन्न प्रकार की ध्वनि/स्वर प्राप्त किए।''[8] इस प्रकार विभिन्न प्रकार की लंबाई की डोरियों को अनुशासित रूप में किसी चीज़ से बांध कर उसको छेड़ने पर भिन्न–भिन्न स्वरों की प्राप्ति हुई। इस तारनुमा डोरी को ऊंगली के साथ अथवा किसी चीज़ के साथ छेड़ कर बजाया गया, इसलिए इस को तंत्री कहा गया। इसमें से जो भी ध्वनि/स्वर प्राप्त हुआ वह कानों को अच्छा लगा, इसलिए इस उपकरण को वाद्य कहा गया है।

समय के साथ–साथ तंत्री वाद्य के रूप, स्वरूप और बनावट में परिवर्तन होता रहा। वैदिक साहित्य में वीणा, करकरी और वाण आदि कई तरह के तंत्री वाद्यों का वर्णन प्राप्त होता है, जिनका कालांतर में और भी अधिक विकास करके विभिन्न प्रकार की वीणा और बाद में सितार का निर्माण हुआ।

तंत्री वाद्यों को दो श्रेणियों में विभाजित किया जाता है।

1. तत्त 2. वितत्त

Social Research Foundation

ISBN: 978-81-947902-6-6

तत्त

यह वह तार वाले वाद्य होते हैं, जिनको उंगली अथवा किसी नुकीले औज़ार के साथ बजाया जा सके।

वितत्त

यह वह तार वाले वाद्य होते हैं जिनको गज़ के स्पर्श के साथ बजाया जाता है।

संगीत की विकासशील यात्रा में तंत्री वाद्यों की प्रमुख भूमिका रही है। इस यात्रा के दौरान तंत्री वाद्यों के स्वरूप, वादन विधी, वादन शैली इत्यादि में अनेक परिवर्तन हुए और नवीन वाद्य प्रचार में आए। कई बार कई वाद्यों के दोष भी सही करने के प्रयास ने आविष्कार का रूप ले लिया और नवीन वाद्यों का निर्माण हुआ है।

तत्त श्रेणी के वाद्यों में सितार वाद्य प्रमुख है। सितार के निर्माण में वीणा का महत्वपूर्ण योगदान है। इस तरह भी कहा जा सकता है कि सितार वीणा का ही एक सरल व विकसित रूप है। तंत्री वाद्यों में सितार को विशेष स्थान प्राप्त है। सितार की उत्पति का आधार जानने के लिए वीणा के बारे में जानकारी प्राप्त करना अति आवश्यक है।

सितार की उत्पत्ति से पहले वादन क्षेत्र में विभिन्न प्रकार की वीणा प्रचार में थी। जिस प्रकार गायन क्षेत्र में ध्रुपद शैली का बोलबाला होता था, उस के साथ संगति के लिए मुख्य रूप में वीणा का प्रयोग होता था। गंभीर गायन शैली ध्रुपद के साथ गंभीर प्रकृति के वाद्य वीणा द्वारा संगति ही उपयुक्त मानी जाती थी। ताल वाद्य के रूप में मृदंग का प्रचलन था। समय के परिवर्तन के साथ वीणा के अनेक रूप प्रचार में आए, जिनका उल्लेख हमें प्राचीन ग्रंथों से प्राप्त होता है। धीरे–धीरे वीणा वादन की स्वतंत्र वादन परम्परा का आरंभ

Social Research Foundation

हुआ। वीणा वादन करने के लिए ''नखी'' (मिज़राब) का प्रयोग किया जाता था। वीणा का स्वतंत्र वादन भी ध्रुपद गायन शैली पर ही आधारित था। वीणा ने स्वतंत्र वादन के साथ संगीत में अपनी स्वतंत्र पहचान स्थापित की ।

प्राचीन समय से ही संगीत वेद, ग्रंथों आदि में अनेक प्रकार की वीणा का उल्लेख प्राप्त होता है। वीणा सारे तंत्री वाद्यों की जननी है। वीणा की तारों की संख्या के आधार पर अनेक प्रकार की वीणा का प्रचार था। ठाकुर जैदेव के अनुसार ''सारे तंत्री वाद्यों को समान रूप में वीणा कहा जाता था। हर वीणा की विशेषता बताने के लिए उसके नाम के आगे सप्ततंतरी; विपंची, शततंतरी, विशेषण लगा दिया जाता था। एक तार वाले को एक तंत्री, सात तारों वाली को सप्ततंतरी, नौ तारों वाली को विपंची और सौ तारों वाली को शततंतरी वीणा कहा जाता था।''[9] दक्षिणी भारतीय संगीत में आज भी वीणा का प्राचीन रूप प्रचार में है।

सितार का आगमन और विकास

परिवर्तन प्रकृति का नियम है। जिसके परिणाम स्वरूप संगीत ने भी हर युग में परिवर्तनशीलता का पहनावा पहना है। प्राचीन समय से चली आ रही ध्रुपद शैली ने मुगल काल तक राज किया। फिर ख्याल गायन शैली की विकासशील यात्रा आरंभ हुई। एक मत के अनुसार सुल्तान हुसैन शरकी ख्याल गायन शैली के आविष्कारक हैं। मुहम्मद शाह रंगीले के समय काल में उनके चंचल मिज़ाज़ के अनुरूप रंगीली, गायन शैली, ख्याल गायन शैली का खूब प्रचार हुआ। बहुत जल्दी प्रचारित और प्रसारित होने वाली ख्याल गायन शैली ने संगीत जगत में विशेष स्थान प्राप्त किया। इसके परिणाम स्वरूप ध्रुपद का प्रचलन कम हो गया। जिस समय गायन

Social Research Foundation

क्षेत्र में ख्याल गायन शैली का विकास हो रहा था, उस समय वादन के क्षेत्र में भी चंचल प्रकृति के वाद्य की आवश्यकता महसूस हुई। आवश्यकता ही आविष्कार की जननी है। जिस तरह ध्रुपद गायन शैली से ख्याल गायन शैली की विकासशील यात्रा आरंभ हुई उसी तरह ही वीणा के विकसित रूप सितार का आगमन हुआ। ख्याल गायन शैली की तरह ही सितार वाद्य ने भी बहुत कम समय में संगीत जगत में धूम मचा दी और प्रमुख स्थान प्राप्त किया। यहां यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि ख्याल जैसी गायन शैली और सितार जैसे वाद्य के वादन के साथ ताल पर संगती करने के लिए उसके अनुरूप ताल वाद्य की आवश्यकता महसूस हुई और तबले का ऐतिहासिक आविष्कार हुआ। ख्याल गायन शैली और सितार वादन के साथ तबले की संगति उपयुक्त मानी गई है।

भारतीय संगीत का प्रमुख और लोकप्रिय तंत्री वाद्य सितार 18वीं शताब्दी में पूर्ण रूप में वीणा का स्थान ले चुका था। प्राचीन समय से 18वीं शताब्दी तक जो स्थान वीणा का था 18वीं शताब्दी के बाद वही स्थान सितार ने प्राप्त कर लिया। इस शताब्दी में और भी बहुत सारे तंत्री वाद्य जैसे रबाब, सुर श्रृगांर, सारंगी, सरोद इत्यादि प्रचार में थे, परन्तु सितार सब से उत्तम माना गया। कुछ तंत्री वाद्यों पर परदे नहीं लगे होते, लेकिन सितार पर परदे लगे होने के कारण अन्य वाद्यों के मुकाबले सरल प्रतीत हुआ। सितार की यह विशेषता है। ''सितार वाद्य वीणा के मुकाबले सरल और चंचल है लेकिन फिर भी सितार के आरंभिक समय में सितार वादन शैली ध्रुपद गायन शैली पर आधारित थी। वीणा वादन की मींड और गमक के काम को सितार पर बाखूबी किया जाता है। इसके अतिरिक्त कृंतन, खटका,

Social Research Foundation

मुर्की, ज़मज़मा, कण आदि सुन्दर सूक्ष्म तत्व के वादन की क्रियाएँ बहुत ही आकर्षित लगती है।''[10]

''18वीं शताब्दी के आरंभ में सितार वादन क्रिया ध्रुपद और वीणा के नियमों के अनुरूप की जाती थी। धीरे–धीरे मींड के काम से मिज़राब के छंदों का सहारा लेना शुरू किया गया। इन छंदों के माध्यम से गतकारी की नवीन परम्परा का आरंभ हुआ। यह एक ऐसा समय था जब गतों को ही विभिन्न लयकारियों में पेश किया जाता था। बांए हाथ के साथ–साथ दाएं हाथ के काम पर भी पुरा ज़ोर दिया गया।''[11]

सितार की उत्पति के विषय में और आविष्कारक के नाम को लेकर विभिन्न विद्वानों के विभिन्न मत हैं :–

1. एक मत के अनुसार, ''सितार ईरान से आया और ''सेहतार'' का विकसित रूप है।''[12]
2. एक और मत के अनुसार, ''खुसरो खां जो कि तानसेन के वंशज़ों में से हुए हैं, उन्होंने सितार का आविष्कार किया है।''[13]

कई विद्वानों का कहना है कि 13वीं शताब्दी में हज़रत अमीर खुसरो सितार के आविष्कारक थे। ''अमीर खुसरो की रचनाओं से यह प्रमाणित होता है कि वह भारतीय संगीत के प्रशंसक व भक्त थे।''[14]

इस संदर्भ में लालमणि मिश्र के अनुसार, ''अमीर खुसरो की मज़ार पर बहुत साल पहले से आयोजन होता आ रहा है। जहां कव्वालियां गाई जाती हैं। जिस व्यक्ति विशेष की मज़ार होती है, उसकी पसन्द अनुसार आयोजन होता है जैसे कि तानसेन की मज़ार पर ध्रुपद का गायन होता है, क्योंकि वह ध्रुपद से सम्बन्धित थे। अगर अमीर खुसरो ने सितार का आविष्कार किया होता या फिर उसका सितार से कोई सम्बन्ध होता तो उसकी मज़ार पर सितार

Social Research Foundation

वादन का महत्व भी अवश्य होता । इसलिए अमीर खुसरो सितार के आविष्कारक होने के श्रेय का अधिकारी नहीं।''[15]

संगीत शास्त्र इस बात का प्रमाण है कि सदारंग और अदारंग के वंशज़ों ने संगीत के विकास में बहुत योगदान दिया है, इसलिए खुसरो खां को सितार का आविष्कारक मानना उचित प्रतीत होता है। इस बात में कोई संदेह नहीं कि किसी भी चीज़ के निर्माण से लेकर उसके विकसित रूप धारण करने तक किसी एक व्यक्ति विशेष का योगदान नहीं होता, बल्कि बहुत लंबे समय तक अनेक प्रतिभावान व्यक्तियों की सोच, मेहनत और कल्पना शक्ति, शोध कार्यों के परिणाम से एक नवीन चीज़ उजागर होती है। वर्तमान समय की भांति 18वीं शताब्दी में वैज्ञानिक उपकरण उपलब्ध नहीं थे। स्वर लिपि पद्धत्ति का भी वैज्ञानिक रूप विकसित नहीं था। वादन संगीत का वैज्ञानिक रूप विकसित नहीं था। वादन संगीत से संबधित बहुत कम सामग्री मिलती है, उस समय सितार वादन क्रिया, वादन परम्परा, वादन शैली के क्रियात्मक रूप को सुरक्षित रखने का स्रोत नहीं था और संगीत की शिक्षा का आदान–प्रदान केवल मौखिक रूप से ही संभव था। इसलिए सितार की उस समय की स्थिति अस्पष्ट और धुंधली दिखाई पड़ती है।

18वीं शताब्दी में खुसरो खां द्वारा सितार का आविष्कार, खुसरो खां के पुत्र आदारंग (फिरोज़ खां) द्वारा फिरोज़ खानी गतों का प्रचलन, इनके ही वंशज़ों में से मसीतखान द्वारा मसीतखानी गतों का आविष्कार, लखनऊ के रज़ाखान द्वारा रज़ाखानी गतों का आविष्कार (जो कि ठुमरी गायन शैली से प्रेरित वादन विधि है) से गत शैली वादन का आरंभ हुआ। जैसे–2 सितार वादन विकसित होती रही, दूसरी तरफ सितार की बनावट एवं स्वरूप भी विकसित

Social Research Foundation

होता रहा। अचल थाट की सितार ने चल थाट की सितार का रूप धारण कर लिया। इसका श्रेय रहीम सेन को जाता है। इस समय बंदिशों को गतकारी के रूप में बजाने की परम्परा प्रचार में थी।

19वीं शताब्दी में पूर्ण रूप में सितार का विकास हुआ। इस समय काल को विभिन्न वादन शैलियों की परम्परा का जन्म काल भी कह सकते हैं। सितार ने संगीत के वादन क्षेत्र में एक विशेष स्थान प्राप्त किया। सितार में मींड का प्रयोग इमदाद खां ने सब से पहले किया। सितार उपर ख्याल, ठुमरी अंग की गायन शैली को बजाने का प्रचलन आरम्भ किया, जो कि 'इमदादखानी बाज' के नाम से प्रचलित हुई। इमदाद खां के पुत्र इनाइत खां ने सितार में तरब के तार शामिल किए, तोड़े अथवा तिहाई का प्रयोग करके वादन को और भी श्रृगांरित कर दिया। सितार प्रगति की ओर बढ़ती रही। सितार की इन विशेषताओं का इस युग में सितार अन्य सभी तंत्री वाद्यों की आग्रनिय रही हैं इसलिए इसको तंत्री वाद्यों का सरताज कहा जाता है।

सितार वादन के अनुशासित रूप की वादन क्रिया ने घरानों का रूप धारण किया। जिनका मुख्य घराना ''सेनीआ'' घराना माना गया है। विभिन्न उस्तादों की वादन शैलियों की विशेषताओं के आधार पर विभिन्न घराने विकसित होते चले गए।

वर्तमान समय में सितार वाद्य विकास की चरम सीमा तक पहुंच चुकी है। परम्परागत वादन शैलियों से लेकर संभावित वादन शैलियों में अनेक प्रयोग किए गए हैं तथा हो रहे हैं। गायिकी अंग प्रधान वादन शैली और तंत्रकारी वादन शैलियां अपने–अपने क्षेत्र में विकसित रूप की धारणी हैं। गायिकी अंग की गंभीरता और तंत्रकारी अंग की चंचलता का अद्‌भुत मिश्रण, परम्परागत वादन विधि के

Social Research Foundation

ISBN: 978-81-947902-6-6

साथ–साथ आधुनिक समय की नवीनता भी प्रदर्शित कर रहा है। ''सितार की वादन क्रिया, शैली, स्वरूप को लेकर अनेक प्रयोग हो रहे हैं। जितने भी प्रयोग हो रहे हैं उतनी ही और नवीन संभावनाएं पैदा हो रही हैं।''[16] गायिकी अंग के शास्त्रीय पक्ष को तंत्री वाद्यों द्वारा उभारने के प्रयास, मिज़राब के बोलों को विभिन्न लयकारियों द्वारा जिनके ऊपर किसी समय केवल ताल वादकों का ही अधिकार था, अब बहुत ही सुन्दर चमत्कारी, आर्कषक और रोचक रूप में पेश किया जा रहा है। इसके साथ ही जटिल तालों में भी गत वादन का प्रचलन काफी बढ़ गया है।

जहां उस्ताद विलायित खां साहिब ने सितार के प्रचार और प्रसार में योगदान दिया है वहां पंडित रवि शंकर जी ने भी सितार द्वारा भारतीय संगीत को विश्व स्तर तक प्रसारित और प्रचारित करने में अहम भूमिका निभाई है। इन के इलावा उ. अब्दुल हलीम ज़ाफर खां, 'पं. निखिल बैनर्जी', उ. रईस खां साहिब, पं. बुधादित्या मुखर्जी, पं. कार्तिक कुमार, पं. देबू चौधरी, उ. शाहिद परवेज, उ. सुजात खां और आधुनिक समय में पं. निलादरी कुमार और पं. हरविन्दर शर्मा का सितार के प्रचार और प्रसार में योगदान है।

पश्चिमी लोग भारतीय संगीत को गायन से ज्यादा वादन के रूप में अधिक प्रयोग में ला रहे हैं। आज सितार वादन में एक नया युग पेश हो चुका है। आज के कलाकार की वैज्ञानिक दृष्टि है, उसकी सोच में जितनी गहराई है उतनी ही तीव्रता भी है। परम्परा को ध्यान में रखते हुए, आधुनिक युग की नवीनता का समावेश करके चकित करने वाले प्रयोग हो रहे हैं।

संगीत विद्या के क्षेत्र में भी वादन संगीत विषय के रूप में सितार वाद्य को ही उत्तम माना गया है। आज वादन संगीत के क्षेत्र

Social Research Foundation

ISBN: 978-81-947902-6-6

में तंत्री वाद्यों के बीच में से अधिक मात्रा में सितार के विद्यार्थी हैं और सम्पूर्ण भारत में वादन संगीत क्षेत्र में तंत्री वाद्यों में सितार के कलाकारों की गिनती सब से अधिक है। यही प्रमाण है कि सितार की मधुर ध्वनि ने हर एक को आकर्षित किया है और विश्वभर में धूम मचाई है।

आत्म आनंद और मनोरंजन दोनों ही कला के उदेश्य हैं। इन दोनों उदेश्यों की पूर्ति सितार वादन ने की है। सितार वादक कलाकार ने वादन में संगीत की परम्परागत संस्कृति के दर्शन और समय की आवश्यकतानुसार मनोरंजन भी हैं। आज का समाज प्रगतिशील समाज है; जिस में नए–नए प्रयोगों का स्वागत होता है। सितार के क्षेत्र में जितने भी प्रयोग किए हैं और हो रहे हैं उनका आधार परम्परागत संगीत ही है। सितार वादन के विकास में वैज्ञानिक तकनीक का भी भरपूर योगदान है और आकाशवाणी, दूरदर्शन, संगीत सम्मेलन में साउंड सिस्टम, रिकार्डिंग स्टूडीयों ओज़, मीडिया, इंटरनेट आदि की भी अहम भूमिका है। सितार वाद्य निरन्तर नवीनता को ग्रहण करता आ रहा है, वर्तमान समय में बहुत ही सुचारू रूप में पेश किया जा रहा है।

आज सितार से प्रेरित कई नवीन वाद्य प्रचार में हैं, जिसमें से कुछ ने संगीत जगत में विशेष स्थान प्राप्त किया है जैसे कि ''मोहन वीणा'' जिस का आविष्कार पं. विश्व मोहन भट्ट द्वारा हुआ है। कुछ नवीन वाद्य जिनका संगीत जगत में आगमन हो चुका है, विकासशील यात्रा आरंभ कर चुके हैं और संगीत जगत में विशेष स्थान बनाने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील हैं जैसे कि ''ज़ीटार'', जिस का अविष्कार पं. निलादरी कुमार ने किया है और जिस को संगीत जगत में लोकप्रियता मिलनी आरम्भ हो गई है।

Social Research Foundation

फिल्म संगीत में सितार की भूमिका

फिल्म जगत आरंभिक समय से ही आर्कषण का केन्द्र रहा है। फिल्म जगत की आयु सौ वर्ष से अधिक हो चुकी है और इस समय दौरान इसने सफलता की बुलंदियों को छुआ है। इसमें कोई संदेह नहीं कि हिन्दी फिल्म जगत का उद्देश्य भारतीय संस्कृति सभ्यता और कलाओं को उजागर करना रहा है। आरंभिक समय में हिन्दी फिल्म जगत की विषय–वस्तु पौराणिक तथा अध्यात्मिक कथाओं पर आधारित रही है। जिसको प्रभावशाली रूप में पेश करने के लिए भारतीय संगीत को माध्यम बनाया गया है। किसी भी फिल्म की संगीत के बिना कल्पना नहीं की जा सकती। फिल्म और संगीत का आपस में अटूट और मधुर संबंध है। फिल्म जगत के आरंभिक समय से ही फिल्मों की सफलता संगीत पर आधारित रही है। फिल्मों में समस्त कलाओं का सुमेल अवश्य मिलता है, परन्तु संगीत कला हमेशा आर्कषण का केन्द्र रही है। फिल्मों की कमज़ोर विषय–वस्तु के बावजूद प्रभावशाली संगीत के बलबूते फिल्में हिट हुई हैं। फिल्म जगत का पहला युग जिसको मूक फिल्मों का युग कहा गया है। उसका काल 1913 से 1930 तक का माना गया है। यह मूक फिल्में भी भारतीय संगीत पर आधारित थी। नायक–नायिका का चुनाव उनकी संगीतिक प्रतिभा के अनुसार होता था। ''आरंभिक समय की फिल्मों में संगीत का प्रयोग संवाद अदायगी के लिए किया जाता था। इसके साथ उस काल के कलाकारों की संगीतिक प्रतिभा का भी प्रदर्शन होता था।''[17] सवाक फिल्मों का युग 1931 से माना गया है। इन फिल्मों पर पूर्ण रूप से पारसी नाटकों का प्रभाव था। पहनावा, नाटकी ढंग से बोले गए संवाद और जिस प्रकार का संगीत प्रयोग होता था, बिल्कुल पारसी नाटकों के संगीत की नकल था, जो कि

Social Research Foundation

भारतीय संगीत पर आधारित था। इस संगीत में तबला, हारमोनियम और वायलन वाद्यों का प्रयोग होता था। ''14 मार्च 1931 को भारत की पहली बोलती फिल्म 'आलमआरा' आई।''[18] फिल्म आलमआरा में संवाद कम और संगीत अधिक था। सवाक फिल्मों के आगमन से जब संगीत का महत्व बढ़ा साथ ही साथ पार्श्व संगीत में वाद्यों का प्रयोग भी स्वभाविक था। ''संगीत क्षेत्र के उन्नत श्रेणी के वाद्यों के प्रयोग ने फिल्म संगीत को मजबूत बना दिया।''[19] फिल्म संगीत के आरम्भिक समय से ही वाद्यों का महत्व रहा है जो कि भारतीय शास्त्रीय संगीत वाद्यों की श्रेणी से प्राप्त होते हैं। फिल्म संगीत का आधार शास्त्रीय संगीत रहा है। आरम्भिक फिल्मों का संगीत पूरी तरह शास्त्रीय संगीत पर आधारित था। फिल्म संगीतकार उच्च कोटि के संगीतकार अथवा संगीत घरानों से सम्बन्धित थे। ''संगीतकार के रूप में जो लोग हिन्दी फिल्मों में आए, उनमें से अधिकतर शास्त्रीय संगीत के ना केवल जानकार थे, बल्कि घरानेदार भी थे।''[20] इन संगीतकारों के द्वारा निर्माण किया गया संगीत उच्च कोटि का था, जिसकी धुनें शास्त्रीय रागों पर आधारित थी। ''आरम्भिक संगीतकारों के संगीत में राग–रागनियों का शुद्ध रूप मिलता है।''[21]

शास्त्रीय संगीत पर आधारित धुनों के साथ शास्त्रीय वाद्यों का प्रयोग ही उपयुक्त होता है। फिल्म संगीत जगत में प्रत्येक शास्त्रीय वाद्य ने अपना विशेष स्थान बनाया है। फिल्म संगीत में परम्परागत वाद्यों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में प्राप्त होता है। जैसे कि सारंगी, सितार, संतूर, वायलन, बांसुरी, सरोद, तानपुरा, सुरमंडल, रबाब (स्वर वाद्य) और मृदंग, पखावज़, तबला (ताल वाद्य) आदि। प्रस्तुत शोध–पत्र के विषय को ध्यान में रखते हुए फिल्म संगीत में सितार के प्रयोग का स्पष्टीकरण किया जाएगा।

Social Research Foundation

फिल्म संगीत में सितार का प्रयोग, फिल्म संगीत की मधुरता और फिल्म गीतों को लोकप्रिय बनाने में अहम भूमिका निभाता रहा है। जिन गीतों में सितार का प्रयोग मिलता है उन गीतों ने हमेशा जन साधारण को आकर्षित किया है। सितार की सभी विशेषताएं फिल्म संगीत में दृष्टिगोचर होती हैं। तंत्री वाद्यों का सरताज माना जाने वाला सितार केवल शास्त्रीय संगीत ही नहीं, बल्कि उप शास्त्रीय संगीत, सुगम संगीत और फिल्म संगीत के लिए भी उत्तम माना गया है। भारतीय संगीत की प्रत्येक विधा में सितार का भरपूर प्रयोग मिलता है। सितार की गम्भीरता, चंचलता, विचित्रता एवं मधुर ध्वनि और आकर्षण का फिल्म संगीत जगत ने भरपूर लाभ उठाया है। फिल्म संगीत में प्रत्येक वाद्य का महत्वपूर्ण स्थान है परन्तु जिन गीतों में सितार का प्रयोग मिलता है वो हृदय को छू जाते हैं। शास्त्रीय संगीत ज्ञान से ओत–प्रोत फिल्म संगीतकारों ने फिल्मों में शास्त्रीय संगीत को महत्व देते हुए शास्त्रीय संगीत के हर पक्ष को बहुत ही गहराई से उजागर करने का प्रयास किया है। ''शास्त्रीय संगीत, उप–शास्त्रीय संगीत, सुगम संगीत अथवा लोक संगीत पर आधारित धुन में सितार के प्रयोग ने फिल्म संगीत को प्रभावशाली बनाने के लिए कारगर भूमिका निभाई है।''[22] शास्त्रीय वाद्यों में से सितार का बहुत और सुन्दर प्रयोग किया गया है। जिन संगीतकारों ने फिल्म संगीत में सितार के रचनात्मक प्रयोग को बहुत सुन्दरता से पेश किया है उनके नाम उल्लेखनीय हैंः जैसे अनिल विश्वास, नौशाद, बसन्त देसाई, सी. राम चन्द्र, रौशन, ओ.पी. नईयर, ख्याम, एस.डी.बरमन, मदन मोहन, शंकर– जय किशन, लक्ष्मीकांत–प्यारे लाल, आर.डी.बरमन इत्यादि।

Kochi Research Foundation

संगीतकार मदन मोहन का सितार के साथ विशेष लगाव था। उनके गीत संगीत में सबसे अधिक सितार का प्रयोग मिलता है। उनके लगभग सारे संगीत में उस्ताद रहीस खां साहिब का सितार बजा हुआ है। ''मदन मोहन और उस्ताद रहीस खां साहिब गहरे मित्र थे, इनकी संगीतक साझेदारी बहुत गहरी थी। मदन मोहन जी कहते थे कि मैं रहीस खां की सितार के बिना संगीत सोच नहीं सकता और रहीस खां साहिब कहते थे कि मदन मोहन ने मुझे अपने संगीत में सितार पर स्वतंत्र रूप से वादन करने की आज़ादी दी हुई थी।''[23] प्रत्येक संगीतकार ने फिल्म संगीत में सितार के प्रयोग से गीत संगीत को प्रभावशाली रूप प्रदान किया है। किसी भी फिल्म में संगीतकार द्वारा बनाए संगीत की प्रक्रिया में संगीतकार दृश्य के वातावरण को समझ के, उसके अनुरूप राग का चुनाव करके धुन तैयार करता है और फिर उस धुन के लिए उपयुक्त वाद्यों का चुनाव करता है। लगभग सभी संगीतकारों ने गीत के प्रत्येक भाव की अभिव्यक्ति करने के लिए सितार का प्रयोग किया और सितार की प्रत्येक खूबियों को हर भाव के संगीत में शामिल किया। चाहे वो अध्यात्मिक गीत हो, चाहे विवाह का गीत हो, चाहे प्रेम गीत हो, चाहे देश भक्ति का गीत या फिर किसी भी उत्सव का गीत हो। हर तरह के भाव की अभिव्यक्ति के लिए तैयार की गई धुन में सितार का प्रयोग मिलता है। संगीतकारों ने अपने संगीत में सितार की गायिकी अंग और तन्त्रकारी अंग की वादन शैलियों को उजागर किया है। उपरोक्त से स्पष्ट हो चुका है कि सितार का सुन्दर प्रयोग बहुत से गीतों में हुआ है, जिन में से कुछ गीत इस प्रकार हैं :

Social Research Foundation

फिल्म	साल	संगीतकार	गीत के बोल	आवाज़
दसतक	1970	मदन मोहन	हम हैं मता ई कुचा ओ बज़ार की तरह	लता मंगेशकर
आहिस्ता–आहिस्ता	1980	ख्याम / भूषण दुआ	कभी किसी को मुकम्मल जहां नहीं मिलता	आशा भौंसले / भुपिन्द्र सिंह
घर	1981	आर.डी. बरमन	आज कल पांव जमींन पर नहीं	लता मंगेशकर
बाज़ार	1981	ख्याम	फिर खिली रात फूलों की	लता मंगेशकर / तलत अज़ीज़
वीर–ज़ारा	2005	मदन मोहन	तेरे लिए	सोनू निगम / लता मंगेशकर
धूम–2	2006	प्रीतम	क्रेज़ी किया रे	सुनीधि चौहान
दबंग–2	2012	साजिद वाजिद	तेरे नैना बड़े दगाबाज़	श्रेया / राहत फतहि अली
बाजीराव मस्तानी	2015	संजय लीला बंसाली	मोहे रंग दे लाल	श्रेया / बिरजु महाराज

Social Research Foundation

जहां सितार के प्रयोग ने फिल्म संगीत की सुन्दरता में वृद्धि की है, वहां फिल्म संगीत ने भी सितार के विकास में अहम भूमिका निभाई है, जैसे कि पार्श्व संगीत में प्रयोग हो रहे वाद्यों का जनसाधारण आनन्द तो उठाते ही हैं और उस पर आकर्षित भी होते हैं, परन्तु उस वाद्य के बारे में उन्हें ज्ञान नहीं होता। कुछ फिल्म निर्देशकों द्वारा सितार वाद्य को लोकप्रिय बनाने के लिए और जनसाधारण तक पहुंचाने के लिए, गीत के दृश्य में नायक/नायिका या सहयोगी कलाकार द्वारा सितार बजाते फिल्माया गया है, जिससे जनसाधारण अपने पसंदिदा नायिक/नायिका के हाथ में पकड़े सितार को देखकर इस वाद्य की ओर आकर्षित होते हैं और इसको सीखने को उत्सुक हो जाते हैं। फिल्म संगीत की यह क्रिया सितार वाद्य के विकास का एक सुलभ पहलू साबित हुई है। जिसके कुछ उदाहरणें इस प्रकार है :– फिल्म 'कोहिनूर' (1960) का गीत 'मधुबन में राधिका नाचे रे' गीत के दृश्य में नायक दिलीप कुमार को सितार बजाते हुए दिखाया गया है। जिसमें लगता है कि दीलिप कुमार ही वास्तव में सितार बजा रहे हैं। ''इस गीत में सितार बजाने के अभिनय को असल रूप में पेश करने के लिए दिलीप कुमार ने उ. अब्दूल हलीम ज़ाफर से सितार की शिक्षा प्राप्त की।''[24] फिल्म 'बहूरानी' (1963) का गीत ''बलमा अनाड़ी मन भाए'' गीत के दृश्य में नायक माला सिन्हा को सितार बजाते हुए दिखाया गया है। फिल्म 'दिल एक मंदिर' (1963) का गीत 'हम तेरे प्यार में सारा आलम खो बैठे' के दृश्य में नायिका मीना कुमारी को सितार बजाते फिल्माया गया है। फिल्म ''आप की कसम'' (1974) का गीत ''चोरी चोरी चुपके चुपके'' में नायक संजीव कुमार को सितार बजाते हुए दिखाया गया है।

Social Research Foundation

ISBN: 978-81-947902-6-6

फिल्म संगीतकारों की संगीतक रचनाएं बनाने की सोच को साक्षात रूप में मूर्तमान वादक कलाकार करते हैं। सितार वादक कलाकारों ने फिल्मी गीत–संगीत में सितार के स्वरों का इस तरह जादू बिखेरा है कि जैसे : सितार खुद ब खुद बोल रहा हो। इसलिए फिल्मी धुनों में सितार बजाने वाले सितार वादक कलाकारों का जिक्र अति आवश्यक है। जैसे कि उ. रहीस खां साहिब, उ. अब्दूल हलीम ज़ाफर खां साहिब, प. रवि शंकर, उ. विलायत खां साहिब, पं. कार्तिक कुमार और आधुनिक समय में पं. निलादरी कुमार इत्यादि। इन सितार वादक कलाकारों ने जहां भारतीय शास्त्रीय संगीत के क्षेत्र में ख्याति अर्जित की है और सितार के विकास में योगदान दिया है वहीं हिन्दी फिल्म संगीत में भी सितार के अद्‌भुत वादन से गौरव और सम्मान प्राप्त किया है।

सितार की विकासशील यात्रा में संगीत की हर विधा का भरपूर योगदान रहा है। हिन्दी फिल्म संगीत जगत ने सितार के सृजनात्मक प्रयोग द्वारा सितार के विकास में प्रभावशाली भूमिका निभाई है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *डॉ. अतुल कुमार गुप्ता, भारतीय तन्ती वाद्यों का इतिहासिक विवेचन, पृष्ठ–7.*
2. *वही, पृष्ठ–7.*
3. *डॉ. लाल मणी मिश्र, भारतीय संगीत वाद्य, पृष्ठ–5.*
4. *डॉ. कुमारी इन्द्राणी चक्रवर्ती, स्वरों और रागों के विकास में वाद्यों का योगदान, पृष्ठ–9.*
5. *डॉ. लाल मणी मिश्र, भारतीय संगीत वाद्य, पृष्ठ–25.*
6. *डॉ. ठाकुर जैदेव सिंह, भारतीय संगीत का इतिहास, पृष्ठ–27.*

Social Research Foundation

ISBN: 978-81-947902-6-6

7. डॉ. अतुल कुमार गुप्ता, भारतीय तन्ती वाद्यों का इतिहासिक विवेचन, पृष्ठ–36.
8. वही, पृष्ठ–9.
9. डॉ. ठाकुर जैदेव सिंह, भारतीय संगीत का इतिहास, पृष्ठ–28.
10. डॉ. सुरिंदर कुमार दत्ता (सुप्रसिद्ध सितार वादक) से प्राप्त जानकारी (19.6.2018)
11. डॉ. दीपिका वालिया, सितार के सरोकार, पृष्ठ–7
12. डॉ. लाल मणि मिश्र, भारतीय संगीत वाद्य, पृष्ठ – 122.
13. डॉ. दीपिका वालिया, सितार के सरोकार, पृष्ठ–7
14. आचार्य बृहस्पति, संगीत चिंतामयी, पृष्ठ–128.
15. डॉ. लाल मणि मिश्र, भारतीय संगीत वाद्य, पृष्ठ – 133.
16. पं. ओम प्रकाश थापर (संगीत आचार्य) से प्राप्त जानकारी (16.07.2019)
17. डॉ. सीमा जोहरी, फिल्म संगीत निर्देशक रोशन व उनके समकालीन संगीतकार, पृष्ठ–13.
18. लावण्या कीरती सिंह 'काव्य' हिन्दी चलचित्र जगत के सफलतम संगीतकार, लक्ष्मीकांत प्यारेलाल, भाग–1, पृष्ठ–8.
19. सीमा जोहरी, फिल्म संगीत निर्देशक रोशन व उनके समकालीन संगीतकार, पृष्ठ–5.
20. डॉ. मुकेश गर्ग, समाज के साथ उठता–गिरता फिल्म संगीत, संगीत, अंक जनवरी–फरवरी, 1998, पृष्ठ–4.
21. पंकज राग, धुनों की यात्रा, पृष्ठ – 12.
22. डॉ. सुरिन्द्र कुमार दत्ता (सुप्रसिद्ध सितार वादक) से प्राप्त जानकारी, (26–09–2019)

Social Research Foundation

23. *पं. हरविन्द्र शर्मा (विश्व विख्यात सितार वादक) से प्राप्त जानकारी (26.09.2019)*
24. *डॉ. सुरिन्द कुमार दत्ता, (सुप्रसिद्ध सितार वादक) से प्राप्त जानकारी (19.6.2018)*

Social Research Foundation

Musical Instrument & Indian Film Industry
ISBN: 978-81-947902-6-6

फिल्मी जगत और संगीत वाद्य

प्रवीण सैनी
एसोसिएट प्रोफेसर
संगीत वादन (तबला)
गोकुलदास हिन्दू गर्ल्स कालिज
मुरादाबाद, उत्तर प्रदेश, भारत

संगीत, यह शब्द सुनकर ही मन व मस्तिष्क में एक अद्वितीय प्रसन्नता व चैतन्यता का संचार होने लगता है। संगीत मनुष्य को मनुष्य बनाता है। इसका सम्बन्ध मानव की आत्मा से है। यह मानव के हृदय में रहने वाली कोमल भावनाओं का पोषक होने के साथ–साथ भावोत्प्रेरक भी है। संगीत एक कला है। प्राचीनकाल से ही संगीत के दो पहलू रहे हैं मनोरंजन और अध्यात्म। संगीत का मनोरंजनी रूप जन मनोरंजन का एक साधन है। संगीत से ही मनुष्य अपनी संवेदनाओं और मनोभावों को व्यक्त करता है। भारतीय संगीत में हम मनोरंजन संगीत को ही सुगम संगीत कहते हैं। सुगम संगीत में फिल्मी संगीत विधा सबसे प्रचलित विधा है जिसने सम्पूर्ण विश्व पर अपना अधिकार कर रखा है। फिल्मी संगीत मात्र एक नाम नहीं है यह एक लम्बी यात्रा है जिसके अपने समय में अनेक उतार–चढ़ाव देखे हैं। फिल्मी संगीत रोचक और मनुष्य की भावनाओं को जन साधारण में पहुँचाने का एक माध्यम है।

फिल्मी संगीत उस समय प्रारम्भ हुआ जब फिल्मों के नायक और नायिका को सम्पूर्ण संगीत का ज्ञान होता था, उन्हें अभिनय, नृत्य, संगीत तीनों का ज्ञान होता था। कला के प्रति ऐसे कला प्रेमियों द्वारा ही फिल्म संगीत की नीव रखी हुई थी। ऐसे कलाकारों में लता मंगेशकर भी एक ऐसी ही कलाकार हैं, जिन्होंने अपने प्रारम्भ के दिनों में अभिनय और गायन एक साथ किया। उस समय फिल्मी दुनिया की नींव रखी जा रही थी साथ ही एक अच्छे संगीत को भी दुनिया के सामने प्रस्तुत किया जा रहा था। इसके बाद समय बदला जिसके फलस्वरूप एक समय पार्श्व गायन आया। इस गायन में अभिनय कलाकार करते हैं और गायन दूसरे कलाकार करते हैं। जिस कारण बहुत मधुर–मधुर आवाज़ें हमें सुनाई दी और फिल्मी दुनिया में संगीत बहुत विस्तृत हो गया। जिसमें अनेक कलाकारों को व्यापार भी मिला और फिल्मी दुनिया में इन्हीं कलाकारों ने अपना बहुत योगदान देकर संगीत को समृद्ध बनाया। जिस प्रकार एक फिल्म बनाने के लिए निर्देशक, सहायक निर्देशक, संवाद लेखक, कहानीकार, नायक–नायिका आदि का होना आवश्यक होता है उसी प्रकार अच्छे संगीत के लिए मधुर आवाज़, गीतकार, संगीतकार, कवि आदि का होना आवश्यक है। इन्हीं कारणों से फिल्मी संगीत समृद्ध होने लगा।

एक फिल्म में कुशल संगीत को एक श्रोता तब सुन पाता हैं, जब उस फिल्म के गीत की, संगीत–रचना करते समय फिल्म की कहानी, गायक–गायकी को भी ध्यान में रखा है और सबसे महत्वपूर्ण निर्णय लिया हो कि कौन सा गीत किस गयिका या गायक की आवाज में होना चाहिए। इसके साथ ही संगीतकार द्वारा गीत की संगीत रचना में प्रयोग होने वाले वाद्यों का चयन भी एक महत्वपूर्ण

कार्य है। गीत की पहली पंक्ति में कैसा संगीत होगा, दूसरी पंक्ति या स्थायो के बाद में कैसा संगीत होगा, गीत की तर्ज के हिसाब से उसमें कौन–कौन से वाद्यों का प्रयोग होगा। इसके अलावा सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि उस गीत में किस तरह के ताल पर रिद्म का प्रयोग किया जाए और किस तरह का वाद्यवृन्द का प्रयोग हो। इन सभी चीजों का तालमेल बिठाकर ऐसा संगीत प्रदान करें जो कि फिल्म के गीत व संगीत की सुन्दरता में चार चांद लगा दे। इस सभी से स्पष्ट होता है कि फिल्म संगीत अनेक प्रकार के उतार–चढ़ावों एवं अटपटी परिस्थितियों में से होकर गुजरना पड़ता है। ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार नदी समुद्र तक अपनी यात्रा पूरी करने में कई पहाड़ी बाधाओं को लांधती हुई आगे की ओर प्रस्थान करती है। श्रोता व दर्शक जो किसी सभा में बैठकर फिल्म संगीत का क्षणिक आनन्द लेते है, उन्हें इन उतार–चढ़ावों के विषय में आभास नहीं होता, जिससे गुजरकर वह गीत–संगीत उन तक पहुंचता है। फिल्म संगीत के निर्माण कार्य में गायको व वादकों का एक समूह कार्यरत रहता है और तब ही जाकर कठिन परिश्रम के पश्चात जो गीत–संगीत तैयार होकर सामने आता है, उसे फिल्म संगीत कहते है। इस संगीतिक यात्रा में अनेक कलाकारों ने अपनी कला का प्रदर्शन किया और इसी दुनिया में अपना स्थान बनाया, जैसे– संगीतकार नौशाद, ओ0पी0नैयर, मदन मोहन, लक्ष्मीकांत प्यारेलाल, एस0डी0 वर्मन, रविन्द्र जैन, जतिन–ललित, आदेश श्रीवास्तव, ए0आर0 रहमान, विशाल शेखर, सलीम सुलेमान, शंकर–एहसान लोग, आदि प्रसिद्व गायक–गयिकाओं में मोहम्मद रफी, मन्ना डे, किशोर कुमार, मुकेश, सुरेश वाडेकर, उदित नारायण, कुमार शानु, सोनू निगम, शान, अजित सिंह, राहत फतेहअली खान, लता मंगेशकर, आशा भोंसले, सुमन

कल्याणपुर, कविता कृष्णमूर्ति, साधना सरगम, श्रेया घोशाल, सुनिधि चौहान, रेखा भारद्वाज आदि ने फिल्मी संगीत को सर्मद्व बनाया।

हमारे देश में ज्ञान–विज्ञान, खेल से रेल और इल्म से फ़िल्म तक, हर वस्तु, हर विद्या के संग्रहालय वर्षों से स्थापित हैं। लेकिन म्यूज़िक का आर्काइव अब खुला है। देश में अपनी तरह का पहला संगीत–संग्रहालय लता मंगेश्कर के 80वें जन्म–दिवस की पूर्व संध्या (27 सितम्बर, 2009) पर उनकी जन्मभूमि इन्दौर में शुरू हुआ, उन्हीं के नाम पर 'लता दीनानाथ मंगेशकर ग्रामोफोन रिकॉर्ड संग्रहालय'। इसमें लताजी के ही नहीं बल्कि हिन्दुस्तानी संगीत के 24 हजार रिकॉर्ड संग्रहीत हैं। हिन्दी फ़िल्मी बातों को ज़्यादातर संजीव इतिहास इसमें समाहित है। आगरा–मुंबई हाईवे पर इन्दौर से सटे गाँव पिगडंबर (राऊ) में स्थापित रिकॉर्डेड म्यूज़िक का अनूठा ख़जाना संगीत–रसिकों के लिए तीर्थ–स्थल से कम नहीं है। अहम् बात यह है कि यह विशाल संग्रहालय किसी सरकारी या ग़ैरसरकारी संस्थान, संगठन या अकादमी ने नहीं, बल्कि सरकारी सहायता के बग़ैर संगीत के एक दीवाने ने किया है, नाम है सुमन चौरसिया। इस संग्रहालय की स्थापना के साथ उनका 35 साल पुराना सपना साकार हो गया है। युवा पीढ़ी के लिए ग्रामोफोन पर रिकॉर्ड बजाते देखना आज किसी अजूबे से कम नहीं है। आईपॉड के हाईटेक युग में ग्रामोफोन रिकॉर्ड दरअसल एंटिक पीस बन गए हैं। जब 70–75 साल पुराने फिल्मी/गैर फिल्मी गीतों से जुड़ी जानकारी जुटाना ही मुश्किल और मशक्कत भरा काम हो, ऐसे में उन गीतों के रिकॉर्ड खोजना, रेयर म्यूज़िक का लाइव कलेक्शन करना समंदर की गहराइयों में गोते लगाकर मोती चुनने जैसा तथा चैलेंजिंग काम है। यह अनूठा अनुष्ठान सुमन चौरसिया ने किया है जो देश के दूसरे सबसे बड़े

रिकॉर्ड संग्राहक हैं (उनसे ज्यादा लगभग 35 हज़ार रिकॉर्ड चेन्नई में वी०ए०के० रंगाराव के निजी संग्रह में हैं।)

सुमन चौरसिया के साधारण व्यक्तित्व को देखकर कोई अनुमान नहीं लगा सकता कि वे असाधारण कृतित्व के धनी, संगीत की विशिष्ट धरोहर के धारक हैं। 26 फरवरी 1951 को इन्दौर में जन्में सुमन चौरसिया को बचपन में फिल्में देखने का जबरदस्त शौक रहा है। फिल्मी गीतों के रिकॉर्ड तब होटलों में खूब बजते थे। फ़िल्म देखने के बाद गीत सुनने के लिए सुमन घंटों होटलों के बाहर खड़े रहते। दिल में कौतूहल था कि अपने पास भी ग्रामोफोन और ये रिकॉर्ड्स होने चाहिए। बस, इसी कौतूहल ने रिकॉर्ड जमा करने का जबरदस्त जुनून दिया और एक रिकॉर्ड बना दिया। फ़िल्म 'उड़न खटोला' में लता मंगेशकर के गाए गीत 'सितारों की महफिल सजी तुम न आए' के लिए 1970 में पहला ग्रामोफोन रिकॉर्ड खरीदा और आज अपनी तमाम सुरीली दौलत लताजी के नाम कर दी। 'उड़न खटोला' के रिकॉर्ड से सुमन चौरसिया के संग्रह की शुरूआत हुई और 'एकला चालो रे' की धुन पर उन्होंने दुर्लभ संगीत–निधियों की अनन्त खोज में क़दम बढ़ा दिए।

हिन्दुस्तानी संगीत के ग्रामोफोन रिकॉर्ड्स जुटाने में सुमन ने अपनी ज्यादार उम्र ही नहीं, सब–कुछ खपा दिया। लोग मकान, बच्चों की पढ़ाई के लिए कर्ज़ लेते हैं लेकिन सुमन भाई रिकॉर्ड खरीदने और जमा करने के लिए कर्ज़दार बने। गाँव शहर दर–ब–दर यायावर की तरह घूम–घूमकर हिन्दुस्तान ही नहीं, पाकिस्तान और बंगलादेश तक के बिखरे मोतियों को एक–एक करके जतन से जुटाया, उनका नायाब ख़जाना बनाया और परोपकारी, सच्चे संगीत–प्रेमी की तरह उस ख़ास ख़जाने को दिल खोलकर रसिकों के

लिए खोल दिया है। इस म्यूज़िक–लाइब्रेरी में आकर और पुराने से पुराना अपना पसंदीदा रिकॉर्ड सुनकर संगीत–रसिक लुत्फ़ उठा सकते हैं, सुकून पा सकते हैं। यह संग्रहालय सिर्फ़ संगीत–प्रेमियों के लिए ही नहीं, म्यूज़िक के स्टूडेंट्स, शोधकर्ताओं और पत्रकारों के लिए साज़ और आवाज़ की सुरीली सौगात है। शब्द, स्वर और सुरों से गीत–संगीत की रचना करने वालों की तरह संगीत के मर्मज्ञ, संग्राहक, संरक्षक और प्रमोटर भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं होते। सुनने और सहेजकर रखने वालों के दम पर ही उम्दा संगीत ज़िन्दा है, समृद्ध है। सुमन चौरसिया ने व्यावसायिक उद्देश्य और प्रचार से परे रहकर संगीत–संरक्षण का अनूठा मिशन पूरा किया है, संग्रहालय के सुचारु संचालन और विस्तार के लिए कोई सरकारी या निजी सहायता मिले या न मिले।

सरकार या ग़ैर–सरकारी संस्थान उन्हें मान–सम्मान दें या न दें, सुमन चौरसिया आज भी इस धुन पर सवार हैं, एकला चलो रे। 1937 में प्रभात फ़िल्म कम्पनी द्वारा व्ही-शांताराम के निर्देशन में एक फ़िल्म बनी थी–'दुनिया न माने'। इस फ़िल्म में अंग्रेज़ी के प्रमुख कवि एच.डब्लू.लौंगफैलो द्वारा लिखित एक कविता 'In the world's broadfield of battle' को केशवराव भोले के संगीत निर्देशन में गायिका शान्ता आप्टे ने गाया था। सन् 1939 में प्रभात फ़िल्म कम्पनी द्वारा निर्मित फ़िल्म 'आदमी' में हिन्दी, पंजाबी, उर्दू, तेलगू, तमिल और गुजराती भाषाओं में गाने गाए गए थे। सन् 1940 में प्रकाश पिक्चर्स ने एक बड़ी लोकप्रिय फ़िल्म 'नरसी भगत' का निर्माण किया था। इस फ़िल्म में गांधी जी का प्रिय भजन ''वैष्णवजन तो तैने कहिये, जे पीड़ पराई जाने रे'' संगीतकार शंकरराव व्यास के संगीत निर्देशन में गायक विष्णुपंत पगनिस ने गाया था। यही भजन सन् 1948 में बनी

फ़िल्म 'मंदिर' में भी संगीतबद्ध किया गया था। सन् 1941 में नवयुग चित्रपट, पूना द्वारा निर्मित फ़िल्म 'संगम' में एक गीत ''अरे कहीं देखा है तुमने'' देश के प्रमुख छायावादी कवि जयशंकर प्रसाद द्वारा लिखा तथा मीनाक्षी द्वारा गाया गया था। फ़िल्म के शेष गीत कवि–लेखक अमृतलाल नागर द्वारा लिखे गए थे। फ़िल्म के संगीतकार चंदेकर थे। सन् 1942 में फ़ज़ली ब्रदर्स कृत ''चौरंगी'' फ़िल्म में उर्दू के प्रसिद्ध शायरों के कलाम शमिल किये गए थे जिनमें 'ग़ालिब', नजरुल हक़ इस्लाम, 'जिगर' मुरादाबादी, 'आरजू' लखनवी और 'पड़ताऊ' लखनवी प्रमुख थे। प्रसिद्ध लेखक पं.मुखराम शर्मा ने अनेक रचानाएँ 'अशान्त' उपनाम से भी की थीं। सन् 1942 में प्रभात फ़िल्म कम्पनी की फ़िल्म ''10 बजे'' में उनके द्वारा गीत लिखे गए थे। अपने समय से सुप्रसिद्ध संगीतकार हंसराज बहल की पहली फ़िल्म सन् 1946 में बनी 'पुजारी' थी। संगीतकार चित्रगुप्त की पहली फ़िल्म भी 1946 में बनी 'लेडी राबिनहुड' थी। सन् 1947 में बने वृत्तचित्र ''नेताजी सुभाष'' उर्फ़ ''जयहिन्द'' में सुदूर पूर्व क्षेत्र में नेताजी सुभाषचन्द्र बोस की सैनिक गतिविधियाँ चित्रित की गई थी। मूलरूप से सन् 1943 में आज़ाद हिन्द की अस्थायी सरकार के ''फ़िल्म प्रभाग'' द्वारा विभिन्न अवसरों पर चित्रित अंशों को इस वृत्त चित्र में क्रमबद्ध किया गया था। इस चित्र के निर्माण का श्रेय सरदार वल्लभभाई पटेल को जाता है जिन्होंने छोटू भाई देसाई के निर्देशन में इसको पुनर्निर्मित कराया था। सन् 1948 में प्रसिद्ध नर्तक उदयशंकर ने देश की नृत्याधारित पहली बैले फ़िल्म 'कल्पना' का निर्माण किया। इस फ़िल्म में कविवर सुमित्रा नंदन पंत के गीत थे। सन् 1948 में कलकत्ता की फ़िल्म ट्रेडर्स ऑफ़ इंडिया नामक संस्था द्वारा ए.के. चटर्जी एवं नानी मजुमदार के निर्देशन में एक ऐतिहासिक फ़िल्म ''सोल्जर्स ड्रीम'' उर्फ़

''सिपाही का सपना'' बनाई थी, जिसके संगीतकार आज़ाद हिंद फ़ौज के सिपाही कैप्टन राम सिंह थे। फ़िल्म के कलाकारों में– नेताजी सुभाषचन्द्र बोस, जी.एम.ली, राम सिंह ठाकुर, हरिसिंह, सांताराम, एस. एन. प्रकाश, नर बहादुर, नज़ीर ख़ाान, प्रीतम सिंह, शेरसिंह आदि थे। इस फ़िल्म में आज़ाद हिन्द फ़ौज के दोनों प्रमुख गीत ''कदम–कदम बढ़ाए जा, खुशी के गीत गाए जा'' और ''शुभ सुख चैन की बरखा बरसे'' सम्मिलित थे। सन् 1933 में ईस्टर्न आर्ट प्रोडक्शन, कराची द्वारा निर्मित फ़िल्म 'इंसान या शैतान' में पहली बार 'जन गण मन अधिनायक' गीत संगीतबद्ध किया गया। फ़िल्म के निर्देशक मोती गिडवाणी और संगीतकार चंडीराम थे। सन् 1947 में बनी फ़िल्म 'अमर आशा' में भी 'वन्दे मातरम्' गीत संगीतबद्ध किया गया था। सन् 1951 में मोटवाने लिमिटेड, बंबई द्वारा निर्मित फ़िल्म ''आन्दोलन'' उर्फ़ ''अवर स्ट्रगल'' में बंकिम चन्द्र चटर्जी द्वारा लिखित ''वन्दे मातरम्'' संगीतकार पन्नालाल घोष के संगीत–निर्देशन में रिकॉर्ड किया गया था। जिसको सुधा, पारुल, मन्ना डे और साथियों ने गाया था। इसी फिल्म में 'जन गण मन अधिनायक जय है' गीत भी था। फ़िल्म के निर्देशक कणि मजूमदार और कलाकार किशोर कुमार, शिवराज, कृष्णकांत, सुषमा, पुष्पा आदि थे। सन् 1952 में फ़िल्मिस्तान लिमिटेड द्वारा निर्मित फ़िल्म 'आनन्द मठ' में भी हेमन्त कुमार के संगीत निर्देशन में लता मंगेशकर एवं साथियों की आवाज़ में 'वन्दे मातरम्' गीत रिकॉर्ड गया था। हेमेन गुप्ता के निर्देशन में बनी इस यादगार फ़िल्म में पृथ्वीराज, गीताबाली, रंजना, प्रदीप, अजीत, भारत भूषण, मुराद आदि कलाकारों ने प्रमुख भूमिकाएं अदा की थी। सन् 1935 में न्यूथ्येटर्स, कलकत्ता द्वारा निर्मित 'धूप छाँव' उर्फ़ 'भाग्यचक्र' में पहली बार पार्श्व संगीत प्रथा का प्रारम्भ हुआ। फ़िल्म के निर्देशक

नितिन बोस और संगीतकार आर.सी.बड़ाल व पंकज मल्लिक थे। कि भारतीय फ़िल्म जगत की पहली महिला संगीतकार सरस्वती देवी थीं, जिन्होंने सन् 1935 में बाम्बे टाकीज़ की फ्रांज ऑस्टेन द्वारा निर्देशित फ़िल्म 'जवानी की हवा' में संगीत दिया था। सन् 1932 में मैडन थ्येडर्स, कलकत्ता द्वारा निर्मित फ़िल्म 'इन्द्र सभा' में 71 गाने थे। जे. जे.मैडन द्वारा निर्देशित इस फ़िल्म के संगीतकार नागरदास नायक थे। फ़िल्म के गाने जहाँआरा कज्जन, विलायत हुसैन, मास्टर निसार, सिल्विया बेल, बीरा पहलवान, पर्ल और अब्दुल रहमान काबुली ने गाए थे। सन् 1964 में गायक–अभिनेता बालगंर्धव को पहली बार 'पद्मभूषण' और 1971 में 'पद्म विभूषण' नृर्तक–निर्माता उदय शंकर को प्रदान किया गया था। सन् 1933 में हिमांशुराय इंडो–इंटरनेषनल टाकीज़ द्वारा निर्मित एवं जे.जे. फ्रीयर हंट द्वारा निर्देशित फ़िल्म ''कर्म'' उर्फ़ "Fath" में देविका रानी ने एक अंग्रेजी गाना "Now the moon, her light has shed" गाया था, जिसका संगीत–निर्देषन संगीतकार अर्नेस्ट ब्राडहर्स्ट ने किया था। यह फ़िल्म अंग्रेजी में भी बनी थी। अंतिम मुगल सम्राट बहादुर शाह 'ज़फर' की मशहूर ग़ज़ल ''न किसी की आँख का नूर हूँ, न किसी के दिल का करार हूँ'' पहली बार सन् 1934 में सागर फ़िल्म कम्पनी द्वारा निर्मित फ़िल्म 'अनोखी मुहब्बत' में रिकार्ड की गई थी। फ़िल्म के निर्देशक रमणीक देसाई और संगीतकार बलराम सिंह थे। सन् 1951 में नर्गिस आर्ट कन्सर्न द्वारा निर्मित फ़िल्म ''प्यार की बातें'' में तीन संगीत–निर्देशक भोला, शर्मा जी और बुलो.सी.रानी थे। फ़िल्म में कुल 11 गाने थे। सन् 1952 में पंजाब फ़िल्म कॉरपोरेशन द्वारा निर्मित फ़िल्म ''ज़माने की हवा'' में चार संगीत निर्देशक ज़ैड शर्मन, गुलशन सूफ़ी, ख़ान मस्ताना और अज़ीज़ हिन्दी थे। फ़िल्म में कुल 12 गाने थे। गांधी जी

का एक अन्य प्रिय भजन 'रघुपति राघव राम, पतित पावन सीताराम' 1948 में बनी फ़िल्म ''आज़ाद हिन्दुस्तान'' और 1948 मे ही बनी ''जय हनुमान'' में भी संगीतबद्ध किया गया था। सन् 1940 में बनी हिट फ़िल्म ''अछूत'' में भी यह भजन था। भारत के स्वतंत्रता संग्राम में प्रत्येक झंडारोहण के अवसर पर गाए जाने वाला गीत ''झंडा ऊँचा रहे हमारा, विजयी विश्व तिरंगा प्यारा'' सन् 1948 में बनी फ़िल्म ''आज़ादी की राह पर'' में संगीतबद्ध किया गया था। प्रसिद्ध गीतकार डॉ. इकबाल का प्रसिद्ध गीत ''सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा'' सन् 1950 में निर्मित फ़िल्म 'हिन्दुस्तान हमारा' में रिकॉर्ड किया गया था।

संगीत वाद्य

फिल्मी संगीत में हमारे भारतीय वाद्यों का अत्याधिक महत्त्व है। वाद्य–यन्त्रों में सारे ही वाद्य फ़िल्मी संगीत में प्रयुक्त होते हैं। जैसे–तबला, सितार, सरोद, तानपुरा, हारमोनियम, बेला, ढ़ोल, ढ़ोलक, हुड़की, नगाड़स, सारंगी, बांसुरी, घुंघरु, मसकबाजा, बिणाई, शंख, चंग, शहनाई, डफ, डफली, झाँझ, रबाब, संतूर, वीणा आदि का प्रयोग हम चित्रपट सिनेमा में देखते रहते हैं। तबला वाद्य अन्य (भारतीय) अवनद्ध ताल–वाद्यों (जैसे–ढोलक, नाल व ताशा) के अतिरिक्त पाश्चात्य ताल–वाद्यों (जैसे–कौंगो ड्रम आदि) की ध्वनियों को भी निकालने में सक्षम है। यहाँ तक कि आवश्यकता पड़ने पर कहीं–कहीं चौड़े मुख–व्यास के तबले से पखावज की आवश्यकता को भी पूरा कर लिया जाता है। इस कारण, लगभग हर प्रकार के फ़्यूज़न में नाद–सौन्दर्य के लिए तबले की ध्वनियों का संयोजन व मिश्रण अपरिहार्य–सा हो गया है।

ISBN: 978-81-947902-6-6

तबले के नाद–सौन्दर्य का उपयोग आज केवल शास्त्रीय संगीत के दायरे तक ही सीमित नहीं रह गया है, बल्कि जीवन के अन्य उपयोगी क्षेत्रों में भी इसका भरपूर उपयोग हो रहा है। फ़िल्म–संगीत के अतिरिक्त आज उत्पादों के विज्ञापनों में भी तबले के नाद–सौन्दर्य के आकर्षण से उपभोक्ताओं को लुभाने का प्रयास बड़ी–बड़ी उत्पाद–कम्पनियाँ कर रही हैं। 'झण्डु च्यवनप्राश' व 'ताजमहल चाय' के विज्ञापन में तबला–नवाज़ उ० ज़ाकिर हुसैन तबले पर अपनी उँगलियों का जादू दिखाते नज़र आते हैं। 'आजतक', 'स्टार न्यूज़' 'एन–डी टीवी'–जैसे बड़े–बड़े न्यूज़–चैनल भी उपभोक्ताओं को आकर्षित करने के लिए प्रभावी रूप से तबले के नाद–सौन्दर्य का उपयोग कर रहे हैं।

भारत में बेला आज अत्यन्त लोकप्रिय वाद्य है। इस वाद्य की लोकप्रियता शास्त्रीय संगीत, चलचित्र संगीत, लोक–संगीत, वाद्यवृन्द आदि में समान रूप से विद्यमान है। भारतीय सभ्यता, सांस्कृति आचार–विचार, संस्कार की छाप आज जिन–जिन देशों में मिलती है, उन देशों में भारतीय सभ्यता का प्रचार भी अवश्य हुआ।

शिवालिक क्षेत्र के आसपास के इलाकों में शहनाई और बाँसुरी का प्रयोग अधिक होता है, बाकी के यंत्र लगभग गौण रहते हैं। पश्चिमी हिमालय क्षेत्र के लोक–नृत्यों में वाद्य–यंत्रों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में होता है। यहाँ ढोल, ठामरा, हिरनसिंगा, दुन्दुभि, झाँझे और घड़ियाल आदि वाद्य यंत्र अधिक प्रयोग में आते हैं। जौनसार–बावर क्षेत्र में लोटा, घण्टा, शंख, डँवर, सिणाई, धँजड़ी, हुड़नी, डुली आदि वाद्यों का मुक्त प्रयोग होता है। 'किन्नौर के लाहौल स्पिति तथा लद्दाख के बौद्ध धर्मावलम्बी क्षेत्र में वाद्य–यंत्रों का तांत्रिक विधान के अनुसार भी प्रयोग किया जाता है।

फिल्मी पहाड़ी लोक–नृत्यों में वाद्य संगीत की विशेष भूमिका है। जब सामान्य वाद्य यन्त्र सुलभ नहीं होते, मदमस्त नर्तक खाली पीपे, लकड़ी के तखते अथवा मुँह से आवाज़ निकालकर वाद्यों का काम लेते हैं। नृत्य में लयात्मकता तथा चमत्कार उत्पन्न करने के लिए सुशिर वाद्यों का अधिक प्रयोग किया जाता है, जैसे–बाँसुरी, शहनाई तथा इससे मिलते–जुलते कई वाद्य, जैसे–सुरना, रणसिंगा, मुरला आदि। ताल–प्रधान नृत्यों में भी सुशिर वाद्यों की अनिवार्यता पल्लवित हुई है–'बाज रे ढ़ोलिया' ढीली नाटी, जान्दी बणदी देसी घाटी। अर्थात ढोल–वादक बजाओ विलम्बित ताल, शहनाई स्वर नही तो नृत्य बेढ़ाल। लोक नृत्यों में ताल के लिए अवनद्ध वाद्यों के अनेक रूप विकसित हुए हैं, जैसे–जुगजड़्, नागुड़ (डमरू–जैसा वाद्य) शोड़, ज़िगिन्, बाम, दुनपुण, डाखु, ढोल, डफ़ नागरा, नागारचु तथा हुड़क और शिवालिक तराई–क्षेत्र में प्रयुक्त टमक, घड़ा और ढोलकी आदि। काँगड़ा तथा जम्मू क्षेत्र में घड़े का प्रयोग बड़े चमत्कारिक ढंग के साथ किया जाता है।

अन्त में हम कह सकते हैं कि फ़िल्मी जगत का संगीत अनूठा है। इस संगीत में हमारे सभी वाद्य यन्त्रों का प्रयोग संगीत के चलन अनुसार किया जाता है। भारतीय वाद्यों में अतिरिक्त आजकल के फिल्मी संगीत में पाश्चात्य वाद्यों का प्रयोग भी होता है जिसमें Drum Set, Trumpet, Cornet, Flogel Hora, Tuba, Eyphonium, Bugle Flute, Piccolo, Clariuet, Saophone, Bag Pipes, Oboe, Bassoon, Side Drum, Tenor Drum, Dass Drum, Cattle Drum आदि हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *पत्रिका संगीत, नवम्बर 2011 पेज 45*
2. *पत्रिका संगीत, मई 2010 पेज 41,42*

3. *पत्रिका संगीत, अप्रैल 2019 पेज 34–36*
4. *पत्रिका संगीत, अगस्त 2007 पेज 38,39*
5. *पत्रिका संगीत, जुलाई 2012 पेज 17*
6. *पत्रिका संगीत, फरवरी 2014 पेज 36*

Social Research Foundation

Musical Instrument & Indian Film Industry
ISBN: 978-81-947902-6-6

हिंदी फिल्म संगीत और ख्याल की आगरा गायकी का परस्पर संबंध : एक अवलोकन

राजेश गोपालराव केलकर
विभागाध्यक्ष,
कंठ्य संगीत,
फेकल्टी ऑफ परफार्मिंग आर्ट्स,
महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय,
वडोदरा, गुजरात, भारत

सारांश

भारतीय समाज और संस्कृति की आत्मा है 'कला'। कलाओं में 'रंगमंच कलाएं' और विशेषतः 'संगीत'। 'फिल्म संगीत' यह 'नाट्य', 'नृत्य' तथा 'संगीत' का अनुपम समन्वय है। इसीलिए यह आम जनता तक किसी भी सन्देश को पहुँचाने का सब से सशक्त माध्यम है। भारतीय फिल्म संगीत की प्रेरणा भारतीय नाट्यसंगीत (विशेषकर मराठी नाट्यसंगीत) है। नाट्य में संगीत का मूल २००० वर्ष पूर्व लिखे गए ग्रन्थ 'भरत नाट्यशास्त्र' है। यही ग्रन्थ आधुनिक भारतीय शास्त्रीय संगीत का भी मुख्य स्रोत है। शास्त्रीय संगीत में धुरुपद के बाद ख्याल गायकी का आविष्कार हुआ और धुरुपद की तुलना में ख्याल गायकी अपनी सहजता के कारण आम संगीत रसिकों में अधिक लोकप्रिय हुई। ठीक उसी तरह विज्ञान और टेक्नोलोजी में विकास के चलते, नाटक के बाद 'फिल्म संगीत' यह एक लोकप्रिय विधा के रूप में उभरकर आयी । इस प्रस्तुत लेखन में शास्त्रीय संगीत परम्परा की ख्याल गायकी के आगरा घराना के कुछ संगीतकार और उनके फिल्म संगीत के साथ परस्पर सम्बन्ध किस सन्दर्भ में रहे इसका अवलोकन किया गया है।

Social Research Foundation

मुख्य शब्द : हिंदी फिल्म संगीत, शास्त्रीय संगीत, ख्याल, बंदिश, रचनाकार, संगीतकार, गायक, गीत।

प्रस्तावना

उन्नीसवीं शताब्दी का उत्तरार्ध और बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में नाटक, संगीत नाटकों का बोलबाला था। 'नाटक' यह मनोरंजन का सबसे लोकप्रिय साधन था। 'संगीत नाटक' के मामले में महाराष्ट्र राज्य अग्रेसर था। अनेक संगीत नाटक मंडलियाँ और होनहार गायक 'संगीत नाटक' के माध्यम से संगीत को आम जनता तक पहुंचा रहे थे। ठीक इसी समय विभिन्न ख्याल गायकिओं के घरानों के संगीतकार उत्तर भारत से निकलकर मध्य, पश्चिम भारत में गुजरात–महाराष्ट्र–कर्नाटक प्रांत तक जाकर विभिन्न संस्थानों में या तो मुंबई, पुणे जैसे शहरों में जा कर बसने लगे। इन घरानों में ग्वालियर, आगरा, किराना तथा जयपुर–अतरौली वगरह प्रमुख थे। इन घरानों के दिग्गज कलाकार पश्चिम भारत में बस जाने के बाद उनके पास अनेक प्रतिभावान सर्जनशील कलाकारों ने तालीम प्राप्त करना शुरू किया। नाटक मंडलियों ने इन कलाकारों को अपने नए नाटकों में संगीतकार के रूप में सम्मानपूर्वक आमंत्रित किया। इनमें आगरा–ग्वालियर–जयपुर घराने के प्रतिनिधि 'देव गन्धर्व' पं. भास्करबुवा बखले प्रमुख थे। इनके प्रमुख शिष्य पं. गोविंदराव टेम्बे, बाल गन्धर्व, पं. मास्टर कृष्णराव फुलंब्रिकर, पं. दिलीपचंद्र वेदी, पं. बापुराव केतकर इत्यादि कलाकारों तथा उनके शिष्यों ने संगीत नाटक और आगे चलकर फिल्म संगीत में काफी योगदान दिया। पं. बखले के अलावा आगरा घराने के ऊ. फैयाजखानसाहब और अन्य कई कलाकारों ने इसमें योगदान दिया। पारंपरिक बंदिशें, राग इत्यादि से प्रेरित होकर नयी रचनाएं, नए गायक कलाकार फिल्म संगीत जगत को दिए। इन्ही तथ्योंकी जानकारी इस लेखन द्वारा रसिकों को प्राप्त होगी। आगरा घराना गायकी विशुद्ध शास्त्रीय संगीत की प्रमुख परंपरा रही है। दूसरी तरफ फिल्म संगीत यह सुगम संगीत की अत्यंत प्रसिद्ध विधा है। दोनों परस्पर आत्यंतिक विरुद्ध छोर की

Social Research Foundation

होते हुए भी उनका परस्पर सम्बन्ध दर्शाना न केवल अत्यंत रुचिकर होगा परन्तु ज्ञानवर्धक भी होगा।

अध्ययन का उद्देश्य

इस लेखन में मुख्यतः गीत रचना, रचनाकार (संगीतकार) और शिष्य–परम्परा के संदर्भ में आगरा घराना और फिल्म संगीत का परस्पर सम्बन्ध दर्शाया गया है।

नाट्य तत्त्व, मराठी संगीत नाटक और हिंदी फिल्म संगीत का प्रारम्भिक काल

सन १९३१ में प्रथम संगीतमय फिल्म 'आलम आरा' में ७ गीत थे। इसके तुरन्त बाद आने वाली फिल्मों में कई गुना अधिक संख्या में गीत हुआ करते थे। यह फिल्मे अधिकतर धार्मिक, ऐतिहासिक, भक्तिपूर्ण होती थी। इन सभी गीतों का आधार शास्त्रीय संगीत था। संगीतकार भी राग के व्याकरण को कायम रखते हुए रचनाओं की निर्मिती करने में गौरव मानते थे। इन रचनाओं में एक अन्य धारा के अनुसार पाश्चात्य ओर्केस्ट्रा इत्यादि का संगीत रचनाओं में प्रयोग होता था। परंतु यहां भारतीय फिल्म संगीत और आगरा घराना तक ही लेखन सीमित रखा है। यहां एक प्रश्न निर्माण होता है की आगरा घराने की गायकी और बंदिशें किस प्रकार से 'नाट्य' की सर्जनात्मक अभिव्यक्ति की पूरक या पोषक है?

नाटक की आवश्यक प्रकृति को परिभाषित करते हुए भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र में निम्नलिखित कहा है–

"नैकांततोत्र भवताम देवानां चानुभावं, त्रैलोक्यस्यास्य सर्वस्य नाट्यम भावानुकीर्तम"

अर्थात नाट्य इस संपूर्ण त्रिगुणात्मक संसार के भावनात्मक अवस्थाओं का एक निरूपण कथन (अनुकीर्तन) है।

यह परिभाषा फिल्म के कला रूप पर भी लागू होती है क्योंकि नाटक की तरह इसमें भी इस दुनिया के हर एक की भावनात्मक स्थिति को दर्शाया गया है। यदि कोई नाटक और फिल्म की इस सार्वभौमिक परिभाषा को 'भावानुक्रमम' (भावनात्मक अवस्थाओं का प्रतिनिधित्व करने

Social Research Foundation

वाला कथन) के रूप में अपनाता है तो सभी में आवश्यक संगीत (नाटक या फिल्म) इन रूपों को भावनाओं को व्यक्त करने में सक्षम होना चाहिए, शब्द के भावों को उद्दीपित करनेवाला होना चाहिए। नाटकों में गीतों का उपयोग निश्चित रूप से नाट्य तत्व को, उसके कथानक को उद्दीपित करने और श्रोताओं पर एक विशिष्ट प्रभाव डालने के लिए ही होता रहा है। मराठी, पारसी, गुजराती, उर्दू नाटकों में इसका हमेशा सफल प्रयोग होता रहा। मराठी नाटक इसमें काफी अग्रणी रहा, क्यों की उस समय के प्रतिष्ठीत शास्त्रीय गायक एवं संगीतकार जैसे की पं. भास्कर्राव बखले, पं. रामकृष्णबुवा वझे, श्री. गोविंदराव टेम्बे, पं. मास्टर कृष्णराव फुलंब्रिकर, पं. दीनानाथ मंगेशकर, पं. राम मराठे, पं. जीतेंद्र अभिषेकी जी ने अपने राग और बंदिशों के संग्रह में से प्रेरित हो कर नाटक के प्रसंगों के अनुरूप मराठी रचनाओं में धुनोंको आरोपित करने के प्रयास किये, जो काफी लोकप्रिय हुए। "भावानुकीर्तनम" (भावनात्मक अवस्थाओं का प्रातिनिधिक कथन) के अनुरूप ही नाटकों में गीतों की परम्परा आगे चलकर फिल्म संगीत में (१९३० के दशक में) आयी क्योंकि अभिनय में उद्दीपन करनेवाले संगीत में शब्दों के भावों का महत्व साहजिकतया अत्यधिक था, अर्थात संगीत शब्दप्रधान था।

शास्त्रीय संगीत में भावों का वहन करने का प्रभावी माध्यम बंदिश एवं आगरा घराने के सन्दर्भ में बंदिश की विशेषताओं का संक्षिप्त विश्लेषण करना आवश्यक होगा, जो की इसप्रकार है–

1. आगरा गायकी में बंदिश के शब्दों में निहित भावों को महत्व देते हुए राग विस्तार होता है।
2. आगरा घराने की गायकी में बंदिश राग विस्तार में आवश्यक ध्वन्यात्मक और रागात्मक तत्वों को निखारने के लिए उपयुक्त महत्वपूर्ण साधन है, अतः राग प्रस्तुति में बंदिश का महत्त्व अत्यधिक है।
3. बंदिश गाते समय 'मुखडाबंदी' (एक प्रकार से गीतों की प्रथम पंक्ति की पुनरावृत्ति) करना और साथ साथ बंदिशों की अन्य पंक्तियों को भी

Social Research Foundation

मुखड़े की तरह गा कर बंदिश में निहित शब्दों के मूल भावों को उजागर करना आगरा घराने के गायकों की वृत्ति रहती है।

4. अन्य घरानों में जहाँ बंदिश का 'मुखड़ा' तक ही बंदिश का महत्त्व है तो आगरा घराने में बंदिश को नाटक की किसी 'थीम' या 'विषय' की तरह प्रस्तुत करके उसका विस्तार होता है। अतः इसे 'रुपकालाप्ति' भी कहते है।
5. आगरा घराना गायकी में बंदिश के शब्दों को भावानुरूप सजाया जाता है। और कई बार इनका गायन ऐसे सुनाई देता है मानों किसी प्रकार का नाट्यमय संवाद हो रहा है। गाते गाते 'पुकार', 'विशिष्ट उच्चार', ठहराव–'pause' या 'अरे हाँ हाँ' जैसे शब्दों के उच्चारण के साथ बंदिश के शब्दों के साथ खेलते हुए बंदिश द्वारा राग गायन में नाट्यात्मक प्रभाव पैदा करते है।

इस प्रकार नाटक या फिल्म में विभिन्न भावों के वहन के लिए आवश्यक संगीत के काफी तत्व आगरा गायकी और उनकी बंदिशों में मिलते है। शायद इसी कारण इस घराने से प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष प्रभावित हुए कलाकार नाट्यसंगीत (विशेषतः मराठी) और प्रारम्भिक हिंदी फिल्म संगीत में अग्रेसर रहे।

हिंदी फिल्म संगीत एवं आगरा घराना

हिंदी फिल्म इतिहास के प्रारम्भ में हिंदी सिने संगीत को 'नाटकों के संगीत' का प्रभाव था। फिल्मों के गाने नाट्य गीतों की तरह होते थे। जैसे पहले बताया गया है की गोविंदराव टेम्बे, मास्टर कृष्णराव फुलम्ब्रिकर, दिलीपचन्द्र वेदी जैसे आगरा घराने से प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष रूप से सम्बंधित कलाकार अपनी रचनात्मकता की चरमसीमा पर थे तभी फिल्मों में गीत–संगीत का सिलसिला शुरू हुआ। इन कलाकारों ने शास्त्रीय, उपशास्त्रीय, लोक संगीत की रचनाओं का काफी उपयोग फिल्मी गीतों में किया। प्रारम्भ काल में फिल्मी संगीत का दारोमदार शास्त्रीय कलाकारों पर ही अधिक था इसीलिए उनका योगदान अधिक रहा। आगरा घराने के इन कलाकारों का बम्बई क्षेत्र में बोलबाला अधिक होने के कारण फिल्मों में भी

Social Research Foundation

उन्ही का योगदान अधिक रहना स्वाभाविक था। अब रागों द्वारा नियंत्रित रचनाओं का समय समाप्त हो रहा था क्यों की फिल्मी गीतों में नाट्यगीतों की तरह विस्तार करने का प्रश्न ही नहीं था। स्वतंत्र रचनाओं का दौर शुरू हो चुका था पर फिर भी राग की झलकियाँ अवश्य रहती थी। १९६० के दशक तक के फिल्मी संगीत रचनाकार शास्त्रीय संगीत के और विशेषतः आगरा घराने के कलाकार ही थे। सर्जनात्मकता तो मानों उनके रक्त में ही थी। यहाँ यह कहना उचित होगा की आगरा घराने के करीब सभी कलाकारों में नविन बंदिशें और नए राग निर्मिति की वृत्ति हमेशा रही। सेंकडो प्रचलित और अप्रचलित राग तथा हजारों बंदिशों का संग्रह इस घराने की विशेषता रही है। शायद इसी का अप्रत्यक्ष प्रभाव हिंदी फिल्म संगीत में रचना निर्मिती में रहा यह कहना उचित ही होगा। १९३०–४० के दशक के स्त्री–पुरुष अभिनेता स्वयं गायक भी रहा करते थे शायद इसी लिए उन्होंने आगरा घराने के गुरुओं के पास तालीम लेने का प्रमाण भी मिलता है।

आगरा घराना एवं कुछ हिंदी फिल्म संगीतकार तथा गायक

इस विधा को समृद्ध करने में पंडित भास्करराव बखले एवं उस्ताद फैयाज खानसाहब की शिष्य परम्परा का योगदान बहुत बड़ा रहा। सामंतशाही द्वारा शास्त्रीय संगीत को प्रोत्साहन मिलना बंद होने के बाद उस्ताद फैयाज खानसाहब जैसे कलाकारों द्वारा शास्त्रीय संगीत को बहुत प्रसिद्धि मिली। उनकी बंदिशें कुंदनलाल सायगल, लता मंगेशकर, मन्ना डे जैसे कलाकारों के माध्यम से जनमानस में बहुत ही लोक प्रिय हुई। यहाँ १९३० के दशक की शुरुआत से हिंदी फिल्म संगीत में योगदान देनेवाले कुछ आगरा घराने के संगीतकार, अभिनेता एवं गायकों का उल्लेख करना आवश्यक होगा।

Social Research Foundation

गोविंदराव टेम्बे (१८८१–१९५५)

आप वैसे जयपुर अतरौली घराने के गायन सम्राट उस्ताद अल्लादिया खान साहेब के शिष्य थे, परन्तु आप को आगरा–ग्वालियर–जयपुर घराने के भास्करबुवा बखले का भी सहवास और मार्गदर्शन मिला। उन्होंने न केवल गीत लिखे परन्तु उन्हें संगीतांकित किया और अभिनय भी किया। आपने मराठी और हिंदी दोनों में १० फिल्मो में अपना संगीत दिया। कुल मिलाकर ११५ गीतों का संगीत आपने दिया जो की कुछ धुन उगम रागों पर तथा उनकी छोटा ख्याल की बंदिशों पर आधारित था।

मास्टर कृष्णराव फुलाम्ब्रिकर (१८९७–१९७४)

आप भास्करराव बखले के पट्टशिष्य थे। आप उच्चकोटि के गायक, अभिनेता एवं संगीतकार थे। मराठी संगीत नाटकों के अलावा आपने प्रभात फिल्म और राजकमल स्टूडियो की कुल मिलाकर १३ फिल्मों में संगीत दिया। आप का संगीत बहुत सहज, सुन्दर और सुगम धुनों पर आधारित होने के कारण आम रसिक उसे सहज तरीके से गुनगुना सकता था। उनकी धुनें पारम्पारिक पदों के अनुरूप थी।

कुंदनलाल सायगल (१९०४–१९४७)

आप जम्मू से एक बालप्रतिभा के रूप में प्रसिद्ध हुए। अपने समय के सर्वाधिक लोकप्रिय फिल्म अभिनेता और गायक के रूप में नाम कमाया। 'देवदास' फिल्म हिट होने के बाद कभी आपने पीछे मुड़कर नहीं देखा। प्रसिद्धि की चरमसीमा पर होते हुए भी सन १९३५ में आप फैयाज खानसाहब का गाना सुनते ही बेहद प्रभावित हो कर गंडाबंध शिष्य बन गए। गयी शताब्दी के सभी फिल्मी गायकों के लिए आप आदर्श थे। आपकी गायकी में खानसाहब की काफी

Social Research Foundation

झलकियाँ मिलती है। जिसमें 'बाबुल मोरा नैहर छुटो जाए' यह ठुमरी उसका प्रमाण है।

हरिश्चंद्र बाली (१९०६)

आप जालंधर–पंजाब के थे। आपने पंडित भास्करबुवा बखले और उन्हीं के शिष्य दिलिपचन्द्र वेदी से तालीम प्राप्त की थी। आपने मुंबई आकर अनेक फिल्मों में संगीत दिया। आपने संगीत शाला की भी स्थापना की थी और साथ साथ संगीत की कुछ पाठ्यपुस्तके भी प्रकाशित की थी।

एस. डी. बर्मन (१९०६–१९७५)

आप त्रिपुरा के राजपरिवार में जन्मे थे। आपने बंगाल के कई नामी कलाकारों से सीखा। परन्तु आप फैयाजखान साहब के गायन से बेहद प्रभावित थे। हमेशा मानते थे की फैयाजखान उनकी प्रेरणा रहे। आप की कुछ रचनाओं में उसका प्रमाण भी मिलता है। राग नटबिहाग में फैयाजखान की प्रसिद्द रचना 'झं झं झं झं पायल बाजे', 'बुझदिल' फिल्म में लता मंगेशकर से गवाई। इसी रचना में शब्द परिवर्तन कर के आपने 'झं झं झं झं मंजीरा बाजे' बंगाली भाषा में गाया। यह दोनों गीत बेहद प्रसिद्द हुए। आपके गायन में उच्चारण में खानसाहेब निश्चित रूप से झलकते थे। इसी तरह 'बनाओ बतिया' यह गीत मन्ना डे से आपने गवाया।

एस. एन. त्रिपाठी (१९१३–१९८०)

आप अभिनेता, संगीतकार, वायोलिन वादक, फिल्म निर्माता, लेखक भी थे। आपने पद्मभूषण पं. श्रीकृष्ण नारायण रातंजनकर जी से मोरिस कोलेज लखनौ में रह कर तालीम प्राप्त की। आपकी अनेक रचनाएँ आगरा घराने की बंदिशों से प्रेरित है। आप ने अनेक फिल्मों में (अधिकतर पौराणिक) सफल संगीत दिया।

रोशनलाल नागरथ (१९१७–१९६७), रघुनाथ सेठ (१९३१–२०१४)

आप दोनों ने भी पं. रातनजनकर के पास मोरिस कोलेज लखनऊ में रहकर तालीम प्राप्त की। दोनों ने आगरा घराना ने की कई बंदिशों को

Social Research Foundation

फिल्मी गीतों में ढाला। दोनों मंझे हुए संगीतकार थे और अनेक फिल्मों में सफल संगीत दिया और फिल्म के अलावा रेडिओ, फिल्म्स डिविजन इत्यादि में काम किया।

वसंत देसाई (१९१२–१९७५)

आपने पं. भास्करबुवा के शिष्य पं. मास्टर कृष्णराव फुलम्ब्रिकर से तालीम प्राप्त की। आपने उनके सहायक के रूप में अपनी आजीविका शुरू की और बाद में हिंदी फिल्म संगीत के एक बेहद प्रसिद्ध संगीतकार के रूप में उभरकर आये। आप की अधिकतर फिल्मों में शास्त्रीय राग आधारित ही गीत दिए।

हुस्नलाल भगतराम (१९१४ एवं १९०२)

आप दोनों ने भी पं. भास्करबुवा की परम्परा के प्रमुख शिष्य पं. दिलिपचन्द्र वेदी के द्वारा संगीत में तालीम प्राप्त की थी। दोनों उत्तम गायक और गुरु तो थे ही पर हुस्नलाल स्वयं उच्च कोटि के वायोलिन वादक भी थे। विख्यात संगीतशास्त्री डॉ. अशोक दा. रानडे के अनुसार उनकी धुनें आगरा घराने की सहज सुन्दर बंदिशों की तरह सरल गुनगुनाने योग्य थी अतः बहुत प्रसिद्द हुई।

मदन मोहन (१९२४–१९७५)

आप लखनऊ आल इंडिया रेडियो के साथ जुड़े तब अनेक श्रेष्ठ कलाकारों से प्रभावित हुए। उनमें स्वाभाविकतः ऊ. फैयाझ खान और पं. रातनजनकर जी भी थे। तलत महमूद भी उसी अरसे में अपना नसीब अजमा रहे थे जो की पं. एस. सी. आर. भट के शिष्य थे। एक बार उस्ताद अझमत हुसैनखां की शिष्या कमला जगतियानी को एक कार्यक्रम में आगरा घराने का राग नन्द की छोटा ख्याल बंदिश 'अजहूँ न आये श्याम' गाते हुए सुना और इतना प्रभावित हुए की उसी तर्ज पर 'तू जहां जहां चलेगा' इस प्रसिद्ध गीत की रचना बनायी। जिसे लता जी ने फिल्म मेरा साया' में गाया है।

Social Research Foundation

जयदेव (१९१८–१९८७)

आप आगरा घराने के पंजाबी गायक पं. सोहन सिंह के शिष्य थे। अनेकों फिल्मों में सफल गीत दिए जो की रागों पर आधारित थे।

श्रीनिवास विनायक खले (१९२६–२०११)

आपने संस्कारी नगरी वड़ोदरा (बडौदा) राज्य में आगरा घराने के नामी गुरु गायनाचार्य पं. मधुसुदन शंकर जोशी, उस्ताद अता हुसैन के मार्गदर्शन में ऐतिहासिक गायन शाला में तालीम प्राप्त की। तब आप पर ऊ. फैयाझ खानसाहब का भी काफी प्रभाव पडा। आपका प्रमुख क्षेत्र मराठी फिल्मी एवं गैरफिल्मी संगीत तक ही सीमित रहा पर उसमे आप अत्यंत लोकप्रिय थे।

इन संगीतकारों के अलावा गुलाम हैदर, चित्रगुप्त, मदनमोहन, हेमंतकुमार, दिलीपकुमार रॉय जैसे कहीं अधिक कलाकार–गायक ई. आग्रा घराने के गुरुओं, कलाकारों से प्रभावित हुए. जिनका उल्लेख यहाँ करना कठिन है।

आगरा घराने की बंदिशों पर आधारित कुछ हिंदी फिल्मी गीत

क्रम	आगरा घराने की	फ़िल्मी गीत	राग	गायक	संगीत निर्देशक	फिल्म
१	मोरे मंदिर अब लो नहीं आये	मोरे मंदिर अब लो नहीं आये	जयजयवंती	आशा भोसले	अनिल बिस्वास	महात्मा कबीर
२	एरी आली पियाबिन	एरी आली पियाबिन	यमन	लता मंगेशकर	रोशन	राग रंग
३	बाट चलत नयी चुनरी रंग डारी	बाट चलत नयी चुनरी रंग डारी	भैरवी	कृष्णराव चोणकर, मो.रफी	एस. एन. त्रिपाठी	रानी रूपमती
४	दरशन देहो शंकर	दरशन देहो शंकर	रागमाला	गुलाम मुस्तफा खां	खय्याम	उमराव जान

Social Research Foundation

५	डर लागे ऊँची अटरिया	डर लागे बरसे बदरिया	सूर मल्हार	लता मंगेशकर	वसंत देसाई	रामराज्य
६	झं झं झं झं पायल बाजे	झं झं झं झं पायल बाजे	नट बिहाग	लता मंगेशकर	एस. डी. बर्मन	बुझदिल
७	झं झं झं झं पायल बाजे	झं झं झं झं पायल बाजे	नट बिहाग	मन्ना डे	एस. डी. बर्मन	गीत गोविन्द
८	बनाओ बतिया	बनाओ बतिया	भैरवी	मन्ना डे	एस. डी. बर्मन	मंजिल
९	'अंखिया जो हती' या 'लकुटी जो हती'	कोई हम दम ना रहा	झिन्झोटी	अशोक कुमार	सरस्वती देवी	जीवन नैया
१०	'अंखिया जो हती' या 'लकुटी जो हती'	कोई हम दम ना रहा	झिन्झोटी	किशोर कुमार	किशोर कुमार	झुमरू
११	" _ "	बदली बदली दुनिया है मेरी	झिंझोटी	महेंद्र कपूर, लता मंगेशकर	एस. एन. त्रिपाठी	संगीत सम्राट तानसेन
१२	वही जाओ जाओ जाओ बालम	झूठे नैना बोले साँची बटिया	बिलासखानी तोड़ी	आशा भोंसले	हृदयनाथ मंगेशकर	लेकिन
१३	अजहूँ न आये श्याम	तू जहां जहां चलेगा	नन्द	लता मंगेशकर	मदन मोहन	मेरा साया

Social Research Foundation

१४	गरजत बरसत भीजत आईलो	गरजत बरसत भीजत आईलो	गौड़ मल्हार	लता मंगेशकर	रोशन	मल्हार
१५	गरजत बरसत भीजत आईलो	गरजत बरसत सावन आईलो	गौड़ मल्हार	लता मंगेशकर	रोशन	बरसात की रात
१६	पनघटवा पे नंदलाल	मोहे पनघट पे नंदलाल	मिश्र गारा	लता मंगेशकर	नौशाद	मुग़ल ए आज़म

अभिनेता–गायक एवं उनके आगरा घराने के गुरु

क्रम	गायक – अभिनेता	गुरु
१	कुंदनलाल सायगल, दिलीपकुमार रॉय	फैयाझ खान
२	दुर्गा खोटे	बशीर खान, विलायत हुसैन खान,
३	तलत महमूद, उल्हास बापट, ज़रीन दारूवाला शर्मा,	एस. सी. आर. भट, एस. एन. रातंजनकर
४	सरस्वति देवी, रोशन, चित्रगुप्त, रघुनाथ सेठ	एस. एन. रातंजनकर
५	नलिनी जयवंत	बशीर खान, अकील अहमद खान
६	मन्ना डे	जगन्नाथबुवा पुरोहित
७	महेंद्र कपूर	जगन्नाथबुवा पुरोहित
८	मुकेश, सुरेन्द्र, सुरैया, दुर्गा खोटे, मधुबाला, सुरैया	खादिम हुसैन खान
९	उदित नारायण, संजीवनी भेलांडे	दिनकर कायकिणी
१०	कुणाल गांजावाला	सुधीन्द्र भौमिक

Social Research Foundation

११	देवकी पंडित	जीतेन्द्र अभिषेकी, बबनराव हलदनकर
१२	शंकर महादेवन, कमलेश भडकमकर	श्रीनिवास खले
१३	शुभा मुद्गल	जीतेन्द्र अभिषेकी
१४	शाल्मली खोलगड़े	शुभदा पराडकर

निष्कर्ष

आग्रा गायकी का इतिहास एवं परंपरा पुराना एवं समृद्ध है। जिसमें धुरुपद जैसे कठिन गायन से ले कर ख्याल, ठुमरी, तराना, अन्यान्य प्रकार गाने की परम्परा रही है। इसके अलावा विभिन्न लोकसंगीत, भक्तिसंगीत का संग्रह इनके पास हमेशा रहा। अनेक मंझे हुए कलाकार, श्रेष्ठ गुरु, रचनाकार, संगीतशास्त्री, विचारवंत प्रतिभाएं इस घराने ने संगीत जगत को दिए। प्रचलित और अप्रचलित राग एवं बंदिशों का विशाल संग्रह, उसे प्रस्तुत करने के रंगदार–ढंगदार पद्धति, विद्यादान में तत्परता, राग संगीत के प्रचार प्रसार की प्रतिबद्धता ने इन्हें देशभर में और विशेषतः बम्बई जैसे प्रांत में जहाँ फिल्मों का विकास हुआ, बहुत लोकप्रिय तो बनाया और सम्मानजनक स्थान भी दिया। केवल राग एवं बंदिशों का संग्रह ही नहीं परन्तु उनमें निहित नाट्यतत्व संगीत नाटकों की तरह फिल्मों के गीतों के लिए पोषक था। फिल्मों की उदियमान अवस्था में आगरा घराने के कलाकार एवं उनसे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सम्बंधित शिष्य प्रशिष्यों ने हिंदी फिल्म की सृजनयात्रा में बड़ा योगदान दिया। उनकी सृजनात्मक क्षमता, ज्ञान से प्रभावित होकर अनेक युवा संगीतकार उनसे आकर्षित हुए, प्रेरणा पायी और हिंदी फिल्म संगीत की शुरूआती यात्रा में बल प्रदान करने का कार्य किया। १९५०–६० के दशक के बाद हिंदी फिल्म संगीत में अनेक बदलाव आये और वर्तमान में बिलकुल अलग सा स्वरुप सामने आया। परन्तु इस संगीत विधा की नींव रखने में आगरा परम्परा का विशेष योगदान है।

Social Research Foundation

संदर्भ ग्रंथ सूची

Books

1. Bharat Muni, Natya Shastra, NMG I. 106
2. Menon, Raghava, "*K. L. Saigal: The Pilgrim of the Swara"* Clarion Books, The University of Michigan 1978.
3. Ranade, Ashok Da., Hindi film song: Music beyond Boundaries, Promilla; 2nd edition, Delhi, 2006.
4. Marulkar, Datta *Antaryami Surr Gavasala*. Majestic Prakashan, 2009

Websites

1. *http://www.sangeetmahal.com/hof/Music_Singers_Saigal.asp viewed on 7th Jan., 2018.*
2. *http://www.songsofyore.com/sd-burman-his-wonderful-landscape-of-non-film-songs/ viewed on 9th Jan., 2018.*
3. *http://www.sdburman.com/bio.html visited on 5th November, 2013.*
4. *http://mtv.in.com/thebuzz/music/this-day-in-music/tdim-sd-burmans-birth-anniversary-1st-oct- 50814677.html on 5th Nov,'13.*

Interview

1. *Interview of Vrunda Mundkur on 18th August, 2014.*
2. *Interview of Ghulam Hasnain Khan on 18th August, 2014.*

Social Research Foundation

Musical Instrument & Indian Film Industry
ISBN: 978-81-947902-6-6

वैदिककालीन वाद्य संगीत एवं प्राचीन गुफाओं व मंदिरों में संगीतमय चित्रांकन

मोनिका दीक्षित
विभागाध्यक्ष
संगीत विभाग
किशोरी रमण महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय
मथुरा, उत्तर प्रदेश, भारत

Social Research Foundation

वाद्य संगीत

गीत, वाद्य और नृत्य तीनों मिलकर संगीत कहलाते हैं संगीत का लक्ष्य धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पुरूषार्थों की प्राप्ति है। वाद्य भी संगीत का मुख्य अंग है, इसलिए उसकी महिमा भी कम नहीं। 'याज्ञवलक्य' ने कहा है कि "श्रुति तथा शास्त्र प्रमाण को जानने वाला, वीणा वादन में संलग्न तथा ताल से अभिज्ञ पुरूष मोक्ष को आनायास प्राप्त कर लेता है।"

राजाओं के अभिषेक तथा यात्रा के समय, विवाह, उपनयन आदि संस्कारों के अवसर पर उत्पात, सम्भ्रम तथा युद्धकाल में वीर, रौद्ररस–प्रधान नाटकों के प्रयोग में साधारण मंगल कृत्यों में, गाने–नाचने वाले रंगस्थ व्यक्तियों के विश्राम के समय वाद्य बजाये जाते हैं। इन अवसरों पर इन वाद्यों का बजाया जाना उत्साहवर्धन और मंगल करता है तथा दुःख का उन्मूलन करके हृदय में स्फूर्ति भर देता है।

ISBN: 978-81-947902-6-6

सांगीतिक वाद्यों का महत्व एवं विशेषताऐं

स्वरूप की दृष्टि से भारतीय वाद्यों को चार प्रकारों में विभक्त किया गया है। तत्, सुषिर, अवनद्ध और घन। वीणा इत्यादि तत तथा वंशी इत्यादि सुषिर वाद्यों का कार्य गीत का पूर्णतया अनुकरण और उत्पादन करना है। गायक के द्वारा प्रयुक्त स्वर, श्रुति, राग, मूर्च्छना और अलंकार इत्यादि का आदर्श अनुकरण वीणा इत्यादि तत वाद्यों में भी गीत की उत्पत्ति कर देता है।

मृदंग इत्यादि अवनद्ध वाद्य गीत का उपरंजन करते हैं। कांसा इत्यादि धातुओं से बने हुए दो धातु खण्ड़ों के परस्पर आघात से ध्वनि उत्पन्न करने वाले झाँझ और मंजीरा इत्यादि घन वाद्यों का कार्य लय की दृष्टि से गीत और वादन का नापना है। ये वाद्य गीत का अनुकरण भी करते हैं।

वाद्यों का स्वतंत्र महत्व भी है। वाद्यों के बजाने की स्वतंत्र शैली में केवल वादन होता है, गीत और नृत्य की चर्चा तक नहीं होती है। अभिनययुक्त नर्तक नृत्य तथा अभिनयरहित गात्र–विक्षेप नृत्त हैं। वाद्यों का स्वतंत्र वादन निर्गीत वादन कहलाता है, इसे गोष्ठवादन अथवा शुष्कवादन भी कहते हैं।

बिना ताल के गान की शोभा नहीं होती, गान की पूर्णता के लिए ताल की आवश्यकता है, यह ताल वाद्य से उत्पन्न हुआ है, इसलिए वाद्य ही श्रेष्ठ है। पुराण में लिखी हुई घटना का उल्लेख करते हुए संगीतदामोदरकार लिखते हैं कि रूक्मिणी और सत्यभामा आदि श्रीकृष्ण की आठ पटरानियों के विवाह काल में भी ये चारों प्रकार के वाद्य एक साथ बजाये गये थे।

"एकतंत्री वीणा के माहात्म्य का वर्णन करते हुए 'शारंगदेव' ने कहा है कि इसके दर्शन और स्पर्श से भोग, स्वर्ग तथा मोक्ष की

Social Research Foundation

प्राप्ति होती है और मनुष्य बृह्महत्यादिक पापों से मुक्त होता है।" वीणा का दण्ड शिव है, तंत्री पार्वती है, कुकुंम विष्णु है, पत्रिका लक्ष्मी है, तुम्ब बृह्मा है, नाभि सरस्वती है, दोरंक वासुकि है, जीवा चंद्रमा है और दोरिका सूर्य है। इस प्रकार सर्वदेवमयी होने के कारण यह वीणा सर्वमंगला है। संस्कृत साहित्य में नारद और सरस्वती तो वीणाधर प्रसिद्ध ही हैं। 'श्रुति' का कथन है कि अश्वमेघ यज्ञ में सामवेदी लोग वीणा के साथ सामगान करें।

सुषिर वाद्यों का महत्व तत वाद्यों के समान ही है, क्योंकि दोनों का प्रयोजन एक ही है। सुषिर वाद्यों में प्रथम वंश (वंशी) है। 'शारंगदेव' का कथन है कि वंश, वीणा और उदर ये तीन स्वरोत्पत्ति के स्थान हैं, इन तीनों में ललित, मधुर और स्निग्ध होने के कारण वंश सर्वश्रेष्ठ है। वंश को संगीत का प्रधान उपकरण बताते हुए शारंगदेव कहते हैं कि "मनुष्य, वीणा और वंश के सहयोग से जो ध्वनि उत्पन्न होती है, उसके आकर्षण को विद्वान लोग ही जानते हैं।

"मतंगाचार्य का मत है कि पथिकों के प्रवास, प्रिया–विरह तथा शोकार्त दशा के प्रदर्शन के समय मध्यलय में वंश की मृदु ध्वनि का प्रयोग किया जाना चाहिए, श्रंगार के प्रदर्शन में द्रुत इत्यादि ललित ध्वनियों का प्रयोग उचित है तथा क्रोध व अभिमान के अवसरों पर वंश के द्वारा द्रुत लय में कंपित तथा स्फुरित ध्वनियों का प्रयोग प्रभावोत्पादक होता है।"

वंश के इन प्रभावों को जानकर ही मुरलीमनोहर (कृष्ण) ने उसे अपना प्रिय वाद्य बनाया था, व्यास से लेकर सूरदास तक सभी कवि मोहन की जादू भरी वंशी के प्रभाव का वर्णन करते रहे हैं।

Social Research Foundation

भैस के सींग में बैल के सींग को फँसाकर श्रृंग नामक सुषिर वाद्य बनाया जाता था। इसकी ध्वनि गंभीर होती थी तथा इसे ग्वाल लोग प्रयोग में लाते थे।

शंख नामक वाद्य की बनावट साधारण शंख से कुछ अलग होती थी। हुम्, युम, थो, दिगदित् इत्यादि गंभीर और भयंकर ध्वनियों को उत्पन्न करके वीर योद्धा शत्रुओं के हृदय को कँपा देते थे।

अवनद्ध अर्थात खाल से मढ़े हुए वाद्यों का कार्य गीत के शब्दों में प्रयुक्त अक्षरों का अनुकरण है। व्याकरणशास्त्र के आचार्यों का मत है कि भगवान शंकर ने नृत्त के अंत में ढ़क्का नामक वाद्य को चौदह बार बजाकर व्याकरण के आदिम चौदह सूत्र उत्पन्न किए। इन चौदह सूत्रों में सभी स्वर और व्यंजन हैं। इसलिए कुशल ढक्कावादक कोण अर्थात् वादनदण्ड के द्वारा ढ़क्का में सभी ध्वनियाँ उत्पन्न कर सकता है।

आकार, स्वरूप, ध्वनि, प्रयोग इत्यादि की भिन्नता के कारण अवनद्ध वाद्यों के अनेक भेद हैं। कुछ छोटे अवनद्ध वाद्यों को स्वयं बजाती हुई नर्तकियाँ नाचती थीं। शारंगदेव ने तेईस प्रकार के अवनद्ध वाद्यों का वर्णन किया है। इसमें भेरी तथा निस्सारण प्रधानतः युद्ध वाद्य थे। भेरी का शब्द शत्रुओं के लिए भयंकर होता था। निस्सारण के शब्द से कायरों के हृदयफट जाते थे। दुंदुभि अर्थात् धौंसा की ध्वनि मेघगर्जन के समान गंभीर होती थी। मंगल कृत्यों के अवसर पर मंदिरों में तथा विजयोत्सवों में तो यह बजाया ही जाता था। युद्ध के समय जब सहस्त्रों भेरियाँ तथा सैकड़ों ढक्काएँ बजती थीं, तब उस भयंकर शब्द समूह में भी दुंदुभि ध्वनि को सुनकर भीम कहता है कि यह दुंदुभिवादन किसने किया, जिसकी ध्वनि सागर मंथन के समय, मंथन के कारण उछल–उछल कर गुफाओं में भरे हुए

Sochi Research Foundation

जल से युक्त और घूमते हुए मंदराचल की भयंकर ध्वनि के समान है, गर्जन करते हुए प्रलयकालीन मेघों के पारस्परिक संघर्षण के शब्द से समता करती है, द्रोपदी के क्रोध की अग्रइतिका है ओर दुर्योधन इत्यादि की मृत्यु का पूर्व संदश देने वाली उस निर्धारित ध्वनि के समान है, जो मेघ और पवन के घोर संघर्ष से उत्पन्न हुई है।

घनवाद्यों में ताल प्रधान वाद्य है। इसका प्रधान कार्य ताल का धारण करना है। घण्टा का वादन देव अर्चना के समय होता है। युद्ध वाद्यों में भी इसकी गणना है। इसके शब्द से सैनिक मूर्छित हो जाते थे। क्षुद्रघंटिकाओं का प्रयोग नृत्य में होता है। नर्तकियाँ इन्हें बाँधकर नाचती हैं, ये एकसाथ बजती हैं।

स्वर तथा लय का स्वच्छंद एवं प्रभावपूर्ण प्रयोग वाद्य संगीत में देखा जाता है। इस प्रकार वाद्यकला गान तथा नृत्य की अपेक्षा अधिक सूक्ष्म और अकृत्रिम आनंद प्रदान करने वाली होती है।

वाद्य–संगीत में संगीत के मूल तत्व स्वर तथा लय के द्वारा बिना किसी अन्य कला की सहायता के श्रोताओं को मधुमति भूमिका तक ले जा कर उस में घण्टों रमाये रहने की शक्ति है। संगीत के द्वारा उत्कृष्ट अभिव्यंजना का जितना अधिक विस्तार वाद्य संगीत में संभव है उतना गान एवं नृत्य में नहीं है।

महर्षि भरत ने नाटक में वाद्य का विधान आवश्यक माना है। उनका कहना है कि कोई ऐसा वाद्य नहीं जो नाटक के दसों भेदों में प्रयुक्त न हो सके, किंतु नाटक के रस–भाव को देखते हुए ही उनका उपयोग करना चाहिए।

गीत, वाद्य की महत्ता का वर्णन करते हुए महर्षि भरत ने ईश्वर प्राप्ति के निमित्त किये गये स्नान, जप आदि से इन्हें सहस्त्र गुना अधिक पवित्र माना है।

Social Research Foundation

मंदिरों व गुफाओं में उपलब्ध भित्ति चित्र व सांगीतिक मूर्तियाँ

हडप्पा की खुदाई में उपलब्ध एक चित्र में एक पुरूष को व्याघ्र के समक्ष ढ़ोल बजाते हुए अंकित किया गया है। झाँझ और करताल के समान वाद्य भी यहाँ उपलब्ध है। एक अन्य स्थान पर ढ़ोलक की आकृति का एक वाद्य मृण्मयी मूर्ति की ग्रीवा से लटकता हुआ दिखाया गया है। इन कलात्मक आकृतियों से यह स्पष्ट होता है कि सिन्धु सभ्यता में 'जो कि ईसा पूर्व ५००० से ३००० तक की मानी जाती है,' ताल वाद्यों का प्रचार यथेष्ठ था। धार्मिक एवं लौकिक अवसरों पर गीत तथा नृत्य के साथ ढ़ोल, दुन्दुभि जैसे वाद्यों की संगति की जाती थी। उस समय ताल वाद्यों का स्थान प्रमुख था। मैसूर राज्य के दक्षिण कनारा जिले में, तुलुवा लोगों के भूतकोला नामक धार्मिक नृत्य के साथ ढ़ोल, नागस्वरम्, घंटा और घुँघरू वाद्यों का वादन गूँज के साथ शुरू होता है। इसके द्वारा शिव के गणों की उपासना व देवी–देवताओं को प्रसन्न किया जाता है।

जनजातियों में अब भी संगीत, नृत्य व ढ़ोल द्वारा पूजा अर्चना की जाती है। प्राचीन मिश्र में पूजा के समय ढ़ोल की संगति महत्वपूर्ण थी। भारत के देवस्थानों में, संदेश भेजने के साधनों में नगाडे वादन का प्रचीन काल से ही महत्वपूर्ण स्थान था। नगाड़े पादरी या ईश्वर की आवाज से संबंधित माने जाते थे। इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि आदिवासी जनजातियों में भी वाद्यों की संगति पूर्ण रूप से विद्यमान थी।

मोहनजोदड़ो की खुदाई में अनेक ऐसी मोहरें मिली है जिन पर 'हार्प' वाद्य खुदा हुआ है। यह तार वाद्यों में सबसे आगे बजाया जाता था। इसी प्रकार का दूसरा शिलालेख मृदंग पर खेलता हुआ व्यक्ति भी पाया गया है। इससे पता चलता है कि उस समय के

Social Research Foundation

लोगों की वाद्य संगीत में बड़ी अभिरूचि थी। यहीं से प्राप्त पशुपति की एक मोहर में एक आदमी मृदंग–वादन करता हुआ अंकित है। उसके चारों ओर कुछ पशु बैठे हैं। इससे यह जानकारी होती है कि उस समय के लोग मृदंग जैसे ताल वाद्यों को बजाकर पशुओं को आनंद–विभोर करना जानते थे।

मोहनजोदड़ो के उत्खनन में सात छिद्रों वाली वंशी, तंत्रीयुक्त वीणा तथा चमड़े के विभिन्न वाद्य–यंत्र भी प्राप्त हुए हैं। दो मुद्राओं पर मृदंग व ढ़ोल का चित्रण हैं वीणा का रूप भी ताबीजों पर मुद्रित है। इससे प्रतीत होता है कि सिन्धु सभ्यता में ढ़ोल के साथ–साथ तार के वाद्यों का भी महत्व था।

'प्रीहिस्टारिक सिविलिजेशस ऑफ दि इंड्स वैली' में 'काशीनाथ दीक्षित' लिखते हैं कि सिंधु प्रदेश के लोगों को शायद कांस्यताल भी ज्ञात था।

शुंग युग के अजंता, सांची तथा भारहुत के शिल्पों में तत्कालीन वाद्यों की आकृतियाँ स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती हैं। इन्द्रशालागुहा के दृश्य में एक नृत्य–सम्बंधी दृश्य में नर्तक के साथ कांस्यताल, दो वीणायें तथा मृदंग अंकित हैं।

अवनद्ध वाद्य दो रूपों में अंकित पाया जाता है – एक अल्पाकृति, जिसको अंगुलियों से बजाया जा रहा है तथा दूसरा वृहदाकार, जिसको स्कन्ध से लटका कर दण्ड से बजाया जा रहा है। एक अन्य चित्र में वंशी तथा दो कांस्य वाद्यों का अंकन हुआ है। भारहुत के एक नृत्य–दृश्य में नर्तिकाओं का समूह–नृत्य उपलब्ध है, जिसमें संगति के लिये दो वीणाओं, कांस्य, मृदंग तथा पाणि वादक का अंकन किया गया है। वीणा का आकार स्पष्टतः ईजिप्सियन लायर से मिलता–जुलता है।

Social Research Foundation

ISBN: 978-81-947902-6-6

सांची के तोरण (ई.पू. २) पर संगीत के प्रसंग में ऐसी ही वीणा का अंकन हुआ है। एक अन्य चित्र में वादक–वृंद अंकित है, जिसमें एक वंशी वादक है, दो ढोलक के समान वाद्य बजा रहे हैं और शेष दो के हाथ में लम्बे श्रृंगाकृति वाद्य हैं। सांची के नृत्यदृश्य में नृत्य के साथ दो मृदंग तथा वीणा की संगति अंकित है। अवनद्ध वाद्यों के अन्तर्गत भारहुत में ढ़प, ढोलक तथा मृदंग का चित्र अंकित है। ढप को छोड़कर अन्य सभी वाद्यों को वादन दण्ड के द्वारा बजाया जा रहा है। अमरावती के शिल्प में इसी प्रकार की तीन मृदंगाकृतियाँ लक्षित होती हैं।

इन सभी संगीतमय चित्रों से यह स्पष्ट होता है कि शुंग युग में कांस्यताल, मृदंग, वीणा, वंशी, ढप, ढोलक, श्रृंग आदि वाद्यों का महत्वपूर्ण स्थान था।

भूमरा के शिव मंदिर में गीत तथा नृत्य के साथ श्रृंग, हुडुक्क, डोल, शहनाई तथा वीणा आदि वाद्यों के चित्र अंकित हैं। शिव मंदिर में शिव के गण भेरी, झाल आदि वाद्य बजाते हुए उत्कीर्ण किए गए हैं। सारनाथ में उपलब्ध एक विशाल प्रस्तर खण्ड में नृत्य करती हुई एक नारी प्रतिमा उत्कीर्ण है। इस नर्तकी के चतुर्दिक अनेक वारांगनाएं बांसुरी, भेरी, मृदंग आदि मधुर वाद्य यंत्रों को बजाती हुई खड़ी हैं।

इससे स्पष्ट है कि प्राचीन मंदिरों में श्रृंग, हुडुक्क, ढोल, शहनाई, वीणा, भेरी, मृदंग, बांसुरी आदि वाद्यों का महत्वपूर्ण स्थान था। विभिन्न वाद्यों के साथ गायन, नृत्य की संगति की परम्परा उस समय विद्यमान थी।

अजंता के एक चित्र में तीन स्त्रियों को कांस्य के साथ गान करती हुए अंकित किया गया है तथा गायन के साथ संगति वाद्य के

Social Research Foundation

ISBN: 978-81-947902-6-6

रूप में ढ़ोलक अंकित है। अजंता, अमरावती, नागार्जुनकुंड आदि स्थानों में सरोदाकार वीणा के दर्शन होते हैं जिससे स्पष्ट होता है कि इस प्रकार की वीणा का प्रचलन समस्त भारत में विद्यमान था।

सातवाहन युग की अमरावती कला में भित्तियों पर संगीतायोजन के दृश्य अंकित हैं, जिनके माध्यम से तत्कालीन वाद्यों का स्वरूप साक्षात् हो जाता है। उदाहरणार्थ, एक चित्र में गीत एवं नृत्य का आयोजन किया जा रहा है। नृत्य के साथ वंशी की संगति अंकित है।

एक अन्य चित्र में गीत तथा नृत्य के साथ वृंदवाद्य का आयोजन दर्शाया गया है। वाद्यों के अंतर्गत कोण से बजाई जाने वाली दो वीणाएं, तुरही तथा मृदंग आदि स्पष्टतः लक्षित होते हैं। अमरावती के भित्ति चित्रों में ढ़ोलक, मृदंग तथा पुष्कर के नानाविध प्रकार स्पष्ट रूप से अंकित है। अमरावती शिल्प में अंकित एक संगीतायोजन में नृत्य के साथ वंशी तथा सरोदाकार वीणा का अंकन हुआ है। प्रतीत होता है कि वीणा का वादन कोण नामक वादन दंड के द्वारा किया जा रहा है। इसी स्थान पर अन्यत्र बुद्ध की आराधना के समय पर वंशी, शंख तथा तुरई जैसे वाद्यों का वादन अंकित है। अमरावती के एक अन्य भित्ति चित्र में "अवरोधसंगीत" का दृश्य अंकित है, जिसके अन्तर्गत तीन महिलाएं सरोदाकार वीणा बजा रही है, तीन या चार स्त्रियां ढोलक बजा रही है, तथा अन्य तीन स्त्रियां वंशी बजा रही है। एक अन्य स्तम्भ पर सिद्धार्थ के नगरनिर्गमन के अवसर पर गीत, वाद्य तथा नृत्य का सामूहिक आयोजन अंकित है।

इन सभी संगीतमय चित्रों से यह जानकारी मिलती है कि सातवाहन युग में वंशी, वीणा, तुरही, मृदंग, ढ़ोलक, पुष्कर, शंख आदि वाद्यों को समाज में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। गीत तथा नृत्य के

Social Research Foundation

साथ मांगलिक उत्सवों पर उपर्युक्त वाद्यों से संगति करने की परम्परा थी।

गुप्तकालीन उदयगिरि शिल्प में गंगा–यमुना के संगम का चित्र अंकित है, जिसमें संगीतायोजन में वंशी, वीणा तथा मृदंग की आकृतियाँ स्पष्टतः परिलक्षित होती हैं। एक वीणा सरोद के आकार की है तथा दूसरी हार्प के समान धनुषाकार है।बाघ गुहा के भित्तिचित्रों में महिलाओं का सामूहिक एवं मंडलाकार नृत्य अंकित है। मुख्य नर्तकी के चारों ओर अन्य नर्तकियाँ गीत–वाद्य–नृत्य में रत् हैं। इनमें से कुछ भावाभिनय में निमग्न हैं, कुछ कांस्य बजा रही हैं तथा नर्तकियाँ नृत्य के साथ डमरू जैसा छोटा वाद्य बजा रही हैं। यह वाद्य उनके वाम स्कन्ध से लटका है तथा दक्षिण हाथ से बजाया जा रहा है।

गुफा सं. ४ के एक दृश्य में पाँच स्त्रियाँ अंकित हैं जो गायक मण्डली जैसी प्रतीत होती हैं। इनमें से एक के हाथ में वीणा जैसा वाद्य–यंत्र है। अगले दृश्य में दो मण्डलों में संगीत का कार्यक्रम दिखाया गया है, जिसमें स्त्रियों में किसी के पास ढ़ोलक है, किसी के पास डण्डे हैं और कोई मंजीरे बजा रही है।

गुफा सं. ४ के बायीं ओर बोधित्सव की विशाल आकृति के निकट एक गिटार जैसा वाद्य बजाती आकृति अंकित है। इससे स्पष्ट है कि गुप्तकाल में वीणा, वंशी, मृदंग, ढोलक, मंजीरा, कांस्य, डमरू आदि वाद्यों का प्रचलन था।

अजंता में अवरोध संगीत का एक दृश्य अंकित है, जिसमें नर्तकी के सुंदर नृत्याभिनय के साथ दो वंशी, दो कांस्य–ताल तथा तीन अवनद्ध वाद्य दर्शित हैं। एक अवनद्ध वाद्य स्पष्टतः डमरू से सादृश्य रखता है तथा अंगुलियों के द्वारा एक ही ओर से बजाया जा

Gopal Research Foundation

रहा है। अजंता की नं. १० की गुहा में राजा को बोधिवृक्ष की पूजा करते हुए अंकित किया गया है। आराधना के साथ गीत, वाद्य तथा नृत्य का प्रदर्शन १५ महिलाओं के द्वारा किया जा रहा है। तीन महिलाएं नृत्य कर रहीं हैं, दो के हाथों में शहनाई अथवा नागस्वरम् की आकृति वाले लम्बे सुषिर वाद्य हैं तथा अन्य तालियां बजाकर संगति कर रही हैं।

अजंता की नम्बर १७ की लेण पर आकाशचारी गंधर्व का चित्र अंकित है। नं. १ की लेण के एक भित्तिचित्र में विदूषक को वीणा बजाते हुए अंकित किया गया है, जिसकी संगति कांस्य ताल के द्वारा की जा रही है । एक अन्य भित्तिचित्र में एक ऐसी वीणा का अंकन हुआ है, जिसके एक ओर तुम्बा लगा हुआ है । नं १ की लेण में सिद्धार्थ को प्रव्रज्या के साथ संगीत प्रदर्शन दिखलाया गया है, जिसमें अर्धविहंगाकार किन्नर सरोद के आकार की वीणा तथा अन्य वाद्यों को बजाकर हर्षोल्लास की अभिव्यक्ति कर रहे हैं। इसी गुफा में अन्यंत्र महाजनक जातक की कथा चित्र के रूप में अंकित है, जिसमें नर्तकी आंगिक अभिनय में निमग्न है, नृत्य के साथ वीणा, वंशी, कांस्य, मृदंग तथा ढ़ोलक जैसे वाद्य बजाये जा रहे हैं। मृदंग ऊर्ध्वाकृति हैं तथा वीणा के अग्र में तुम्बीफल साफ दिखाई देता है।

अजंता की पहली गुफा की बांयी दीवार पर नृत्य का दृश्य अंकित है जिसमें नर्तकी की गतिमय मुद्रा तथा उसके परिपार्श्व में स्थित अन्य सुंदरियों द्वारा वेणु, मृदंग, मंजीरों आदि का वादन बड़ी सुंदरता से चित्रित हुआ है।

इन सभी संगीतमय चित्रों से स्पष्ट है कि ई. सन् ४५० से ६०० के बीच वाकाटक काल में समाज में वंशी, कांस्यताल, शहनाई,

Gosai Research Foundation

नागस्वरम्, वीणा, मृदंग, ढ़ोलक, वेणु, मंजीरे आदि वाद्यों का महत्वपूर्ण स्थान था। ये वाद्य उस समय के समाज में प्रचलित थे।

औरंगाबाद में उपलब्ध गुहा नं. ७ में सात संगीतकारों की संगीत आराधना अंकित है, जिसमें नर्तकी के चारों ओर कांस्य, वंशी, मृदंग तथा ढोलक आदि वाद्य बजाये जा रहे हैं। नर्तकी के पार्श्व में गायक का गान प्रचलित है। इससे स्पष्ट है कि सातवाहन राजाओं के काल में कांस्य, वंशी, मृदंग तथा ढ़ोलक वाद्य प्रचलित थे।

निष्कर्ष

उपर्युक्त उदाहरणों के आधार पर हम कह सकते हैं कि हमारे समाज में प्राचीनकाल से ही वाद्यों का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। अलग–अलग युगों में अलग–अलग शासकों का साम्राज्य भारत में रहा परंतु वाद्यों का सांगीतिक महत्व कम नहीं हुआ। उपरोक्त मंदिरों व गुफाओं में उपलब्ध भित्ति चित्रों व सांगीतिक मूर्तियों से हमें पता चलता है कि भारत में सांगीतिक वाद्यों का प्रचलन पर्याप्त रहा है तथा आज भी बृज प्रदेश, काशी, राजस्थान आदि के मंदिरों में प्रातः और सांय वाद्य संगीत के साथ पूजा अर्चना की मंगल ध्वनि गुंजायमान होती रहती है।

इस प्रकार संगीत के मूल तत्व की दृष्टि से, स्वतंत्र कला की दृष्टि से, दूसरी कलाओं को निखार प्रदान करने की दृष्टि से, सामाजिक–धार्मिक रूप में प्रतीकात्मकता की दृष्टि से, स्वरों के विश्लेषणात्मक कार्यों की दृष्टि से वाद्य कला जितनी अधिक महत्वपूर्ण एवं व्यापक है उतनी अन्य कोई कला नहीं है।

वाद्यों के द्वारा जिस प्रकार युद्ध क्षेत्र में कायर के हृदय में भी वीरता का भाव जाग उठता है उसी प्रकार वाद्य विशेष मानव की

Social Research Foundation

सुकोमल भावनाओं को जागृत करनें तथा उसके पोषण में भी सफल होते हैं।

कहा जाता है कि सुकरात ने सिकंदर से कहा था कि जब वह भारत से आए तो तीन चीजें लाए–एक तो ज्ञानी गुरू, दूसरा गंगाजल और तीसरी भारतीय बांसुरी। ऐसी त्रिभुवन मोहिनी थी बाँसुरी की वह स्वर–माधुरी।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *संगीत विशारद – वसंत – पृष्ठ सं. 568 – 572*
2. *भारतीय तथा पाश्चात्य रंगमच – पं. सीताराम चतुर्वेदी, पृष्ठ सं. 657 – 659*
3. *संगीत चिंतामणि – आचार्य बृहस्पति, श्रीमती सुमित्रा कुमारी, श्रीमती सुलोचना बृहस्पति – पृष्ठ सं. 32*
4. *भारतीय संगीत वाद्य – लालमणि मिश्र – पृष्ठ सं. 9 – 13, 190*
5. *भारतीय संगीत का इतिहास – उमेश जोशी – पृष्ठ सं. 484*
6. *भरत नाट्यशास्त्र – अध्याय 34, 36*
7. *भारतीय संगीत एक ऐतिहासिक विश्लेषण – डॉ. स्वतंत्र शर्मा – पृष्ठ सं. 6*
8. *हिन्दुस्तानी संगीत शास्त्र (भाग–२) – भगवत शरण शर्मा – पृष्ठ सं. 38*
9. *संगीत मासिक पत्रिका – मई २००० – पृष्ठ सं. 20*
10. *ध्वनि और संगीत – ललित किशोर सिंह – पृष्ठ सं. 132*
11. *संगीत मासिक पत्रिका "वाद्य वादन अंक" – जनवरी – फरवरी १९७५ पृष्ठ सं. 19*
12. *भारतीय संगीत का इतिहास – राम अवतार वीर – पृष्ठ सं. 27 तथा 31*

Social Research Foundation

13. *सिन्धु सभ्यता – डॉ. सतीश चन्द्र काला – पृष्ठ सं. 67*
14. *काशीनाथ दीक्षित – प्रीहिस्टारिक सिविलिजेशंस ऑफ दि इंड्स वैली*
    पृष्ठ सं. 30
15. *निबन्ध संगीत – लक्ष्मीनारायण गर्ग – पृष्ठ सं. 133*
16. *द्र. स्कल्पचर इन्सपायर्ड बाय् कालिदास – सी. शिवराम मूर्ति – पृष्ठ 78*
17. *कला और कलम – डॉ. गिर्राज किशोर अग्रवाल – पृष्ठ सं. 33, 62*

Social Research Foundation

Musical Instrument & Indian Film Industry
ISBN: 978-81-947902-6-6

लोक जीवन में लोकोक्ति का महत्व

हेमलता पांडेय
संगीत विभाग
शास्त्री नगर ऋषिकेश
उत्तर प्रदेश, भारत

सारांश

स्वास्थ्य शिक्षा और साहित्य का परस्पर गहरा सम्बन्ध है मानव सामाजिक प्राणी होने के नाते अपने भाव, विचार एवं ज्ञान को दूसरों तक पहुँचाने के साथ–साथ दूसरे से अधिगम की जिज्ञासा भी रखता है इस दिशा में साहित्य जनसामान्य को सफलतापूर्वक ज्ञान प्रदान करने हेतु एक सशक्त विधा है कहते है "जैसा खाय अन्न वैसा हो मन" अर्थात जैसा भोजन ग्रहण करेंगे वैसे ही मनः स्थिति होती है उक्त सूक्त जनसामान्य को यह सन्देश देती है कि स्वच्छ भोजन सन्तुलित आहार ही स्वस्थ मस्तिष्क का निर्माण कर सकता है। स्वास्थ्य सूक्त वात, पित्त और कफ का सन्तुलन एवं ज्ञान आयुर्वेद में निहित है जिसका प्रचार प्रसार मात्र साहित्य द्वारा ही सम्भव है वात, पित्त, कफ आदि के सन्तुलन होने पर शरीर स्वस्थ कहा जा सकता है परन्तु मनः स्थिति प्रतिकूल होने पर शरीर पूर्ण रूप से स्वस्थ होने पर भी अस्वस्थ माना जायेगा मनः शान्ति हेतु मानव प्रारम्भ से ही साहित्य का सहारा लेता आया है तथा साहित्य सदैव ही मानव मात्र के लिए कल्याणकारी सिद्ध हुआ है। प्रारम्भ से ही साहित्य की विविध कालजयी विधाओं से हमें स्वास्थ्य चेतना मिलती रही है।

मुख्य शब्द – लोकानुभव, अकर्मण्यता, सकारात्मक, नकारात्मक, अभावग्रस्त, स्वाभाविक।

प्रस्तावना

मुख–सुख हेतु हम सदैव भाषा में परिवर्तन करते चले आए हैं कुछ सार्थक तथ्य जिन्हें हम स्वतन्त्र रुप से समाज के समक्ष प्रस्तुत नहीं कर

Social Research Foundation

सकते वक्रोक्ति एवं हास्य–व्यग्य के माध्यम से हम उन तथ्यों को प्रस्तुत कर सकते हैं, इस प्रकार वह सार्थक भी सिद्ध हुए हैं लोक में समूह की भावना विद्यमान होती है जिसमें पारस्परिक विचार आदान प्रदान होना स्वाभाविक होता है यहाँ विचारों में आदान प्रदान में प्रयुक्त भाषा में लोकोक्ति स्वतः ही प्रस्फुटित होते हैं लोकोक्ति लोक अनुभव पर निर्भर रहती हैं यदि समाज में किसी कार्य को करने के बाद लाभ–हानि, सुख–दुख, जय–पराजय, प्राप्ति के बाद वह कार्य सन्देश बन कर रह जाता है यही सन्देश गहन अर्थपूर्ण एवं उपयोगी होते हैं। यहाँ गढ़वाली लोकोक्ति एवं लोग सन्दर्भ में उनके प्रयोग पर प्रकाष डाला गया है लोक में आज भी इनका प्रयोग स्वतंन्त्र रूप से होता है।

लोक साहित्य में अनायास ही स्वस्थ जीवन के सूक्त प्रस्फुटित हुए हैं यथा– "सौण दैई मौस्या बोई"

अर्थात् श्रावण मास में दही के सेवन की तुलना सौतेली माँ से की गई है जिससे स्वाभाविक स्नेह की कल्पना भी नही कर सकते, स्पष्ट है कि श्रावण मास में दही के सेवन स्वस्थ जीवन का मार्ग अवरूद्ध होता है।

विषय विस्तार

यूँ तो साहित्य की विधाओं में स्वास्थ्य चेतना निहित है किन्तु यहाँ लोकोक्ति में निहित स्वास्थ्य चेतना को प्रकाश में लाने का प्रयास किया गया है। "सामान्य लोक की उक्ति लोकोक्ति कहलाने का गौरव केवल उसी उक्ति को मिलता है जो लोकप्रिय होती है और जिसमें लोक का अनुभव सूत्र रुप में संचित होता है लोकानुभव प्रायः घटनामूलक होता है। वे घटनाए ही होती है जो जीवन का अनुभवजन्य सत्य और परिस्थिति प्रस्तुत् ज्ञान से अवगत कराती हैं" लोकोक्ति में निहित चेतना को दो आधार पर देखा जा सकता है एक और जिन लोकोक्तियों में मानव आहार के विचार विघमान हैं तो दूसरी और हास्य व्यंग्य से युक्त लोकोक्तियाँ हैं। कुछ लोकोक्तियाँ जिनमें स्वतंत्र रूप से स्वस्थ जीवन के उपदेश विधमान है यथा–

Social Research Foundation

1 "ओडू घर ओड्या वैद घर रॉंड" (मिस्त्रियों का घर झोपड़ी और वैध के घर में विधवाएँ।)

अर्थात् कहते हैं "दिए तले अंधेरा" समाज में प्रायः देखा जाता है कि जो लोग सदैव दूसरों को उपदेश दिया करते हैं वह स्वयं उन बातों से कोशों दूर रहते हैं जिस प्रकार घर बनाने वाले मिस्त्री का घर प्रायः छप्परयुक्त होता है उसी प्रकार वैद्यों के घर विधवायें होती हैं।

2. "अति लाड बडी खाड" (अति स्नेह बड़ा खड्डा)

अर्थात् अति सर्वत्र वर्जयेत्

परिवार में बच्चों के प्रति अति स्नेह के कारण हम प्रतिकूल भोज्य पदाथों का सेवन करवाते है जिससे उनके स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है यही उक्ति यदि व्यक्ति के चरित्र हेतु प्रयुक्त होती है तब भी सार्थक सिद्ध होती है किसी के प्रति अत्यधिक स्नेह व्यक्ति को अवनति की ओर ले जाती है।

3. खैली ब्वारी पेलि जी .....

(खा लिया बहू पी लिया जी)

उक्त लोकोक्ति में सास बहू के सम्बन्ध को देखा गया है सास पूछती है कि बहू खा लिया तूमने, तब बहू उत्तर देती है जी पी लिया। अर्थात् खाने में अन्न की मात्रा कम तथा पानी की मात्रा अधिक होने का प्रमाण मिलता है।

मानव को अन्न का कीड़ा कहा जाता है कहीं न कहीं हम अपने स्वास्थ्य के साथ खिलवाड़ करते हैं स्वस्थ मानव को पर्याप्त एवं सन्तुलित भोजन करना चाहिए।

4. "दाना कि बोल्यूँ औळा कु स्वाद (बूढ़े की बात आँवले का स्वाद)"[2]

उक्त लोकोक्ति बड़ो की बात मानने पर सार्थक सिद्ध होती है हमारे बड़े अनुभव से ओत–प्रोत होते हैं तथा अपने से छोटे व्यक्तियों को निरन्तर निर्देशित करते रहते हैं जिससे कि अनहोनी न होने पाय जो उनका कहना मान ले उनका कार्य सिद्ध हो जाता है तथा जो न माने वह पछतावा करता रहता है।

Social Research Foundation

5. जन दुद्ध तन बुद्ध.....

(जैसा दूध वैसे बुद्धि)

उक्त लोकोक्ति सकारात्मक नकारात्मक दोनों अर्थों में प्रयुक्त होती है जब हम किसी कार्य की और प्रवृत्त होते हैं तथा उसकी जो भी उपलब्धि होती है उसका श्रेय हमारे परिवेश को जाता है उक्त लोकोक्ति "जैसे खाय अन्न वैसा हो मन" उक्ति का भावसाम्य है यहाँ हमारे भोज्य को बुद्धि को नियन्त्रित एवं विकास करने का प्रमाण माना है।

6. आग नी देखणी इस्सी सौत नी देखणी छोट्टी,

(आग और सौत को कभी छोटा नहीं समझना चाहिए)

जिस तरह हम आग की छोटी सी चिंगारी को छोटा नही समझ सकते उसी तरह स्वास्थ्य सम्बन्धी छोटे से विकार को भी अनदेखा नहीं करना चाहिए आलस्य वश छोटी सी फुंसी को यदि अनदेखा किया जाय तो वह कैन्सर जैसी घातक बीमारी को जन्म दे सकती है जो कि जानलेवा हो सकता है ।

7. "खै जाणी क्याला पात नी खै जाणी कपलि हाथ",

(केले के पत्ते में खा लिया तो ठीक नही तो सिर ही हाथ फैर लिया)

उक्त सूक्ति अकर्मण्यता की ओर संकेत करती है लोक में केले के पत्तें में भोजन शुभ माना जाता है साथ ही इसमें व्यक्ति विशेष ही खाना खा सकता है जो कि बुद्धिमान हो जो लोग आलसी होते है वह केवल किस्मत को ही दोष देते है हमारे जीवन में कुछ कार्य अति जटिल होते है किन्तु उनके परिणाम उतने ही अच्छे होते है परिश्रमी व्यक्ति इन कार्यो को पूरा करते हैं।

8. "मैं जौंळ हो नितर तेरी नाक काटदू"

(या तो मेरी हो जा या में तैरी नाक काट दूँ)

समाज में कुछ लोग दूसरों में इतनी आसक्ति रखतें हैं कि वह किसी बुरे परिणाम के बारे में न सोचकर कार्य की और प्रवृत्त हो जातें है। जिसके कारण मानव जीवन पूर्णतः प्रभावित हो जाता है।

9. "अफु चलदा रीता, हेक पढौदन गीता "

Social Research Foundation

(पर उपदेश कुशल बहतेरे)

अर्थात् दूसरों को उपदेश देना बहुत सरल है किन्तु स्वयं उनका पालन करना उतना ही कठिन है,।

एक ओर उक्त लोकोक्तियाँ स्वतंत्र रूप से स्वास्थ्य चेतना से ओतप्रोत है जबकि दूसरी ओर व्यंग्यमय लोकोक्तियाँ है जो हास्य व्यंग्य के माध्यम से हमारा मनोरंजन ही नहीं बल्कि मनः स्थिति को स्वस्थ्य रखनें में सहायक होते हैं। जब हम किसी व्यक्ति या वस्तु का चरित्रांकन करने में सकुचा जाते है तब हम इन उक्तियों का सहारा लेते हैं यथा–

10." एक गुरू का सौ चैला भूखा मोरला ता अफि छटेला"

अर्थात् भले ही एक अयोग्य व्यक्ति के अनेक अनुगामी हो किन्तु जब उनकी मूल भूत आवश्यकता की पूर्ति न हो तो उनकी छटनी स्वतः हो जाती है यहाँ उन व्यक्तियों पर व्यंग्य किया गया है जो अन्धानुकरण करतें है तथा वास्तविकता से दूर रहते हैं।

11. लगडु छोड़न पर दगडू नी छोड़न

(खाना छोड़ देना पर साथ नहीं छोड़ना)

संघ में ही शक्ति को देखा जाता है लोक में आज भी एकता की भावना सर्वाधिक है यहाँ के निवासी प्रायः कृषि पर निर्भर रहते हैं तथा ये लोग खेती–बाड़ी एवं पशुपालन के लिए घने जंगलो में भी प्रवेश कर जाते थे जहाँ वह सुरक्षित नही होते हैं यदि वह समूह के साथ किसी कार्य को सम्पन्न करते थे तो स्वयं को सुरक्षित समझते थे और कार्य उचित समय पर सम्पन्न हो जाते थे अतः सहयोग की भावना ही हमें विकास के मार्ग पर अग्रसर कर सकती है

12. नाचि नी जाणी पटंगडु वंगु,

खै वै नी जाणी जवै जंगु ।।

अर्थात् नाचना न आए तो आंगन टेढ़ा और समझदार न हो तो पति ही सीधा।

Social Research Foundation

समझदार व्यक्ति प्रत्येक कार्य का निर्वाह सूझ बूझ और लगन के साथ करता है जबकि अकर्मण्य लोग कार्य एवं कार्य के उद्देश्य को न देखते हुए केवल दूसरों को दोष दिया करते हैं।

13. म्यार धौर ऐली ता क्या लैली ।

त्यार धौर औलु ता क्या देली।।

मेरे घर आओगे तो क्या लाओगे और यदि मै तेरे घर आया तो क्या देगा कुछ लोग इतने लालची होते हैं कि केवल अपने स्वार्थ के बारे में सोचते हैं ।

14. अगनै मुछाली पिछने औन्दी।

अपने द्वारा किए गए कृत्यों की सजा खुद ही भुगतनी पड़ती है जैसे कार्य करोगे वैसा ही फल प्राप्त होगा।

15. पैसा न पल्ला द्वी ब्यौ कल्ला।

धनहीन होकर भी अनावश्यक कार्यो के प्रति रूचि रखना

16. "हैका देखी लाईं पैरी अपणी देखी नांगी ।

मेरा बुबा की मति गै मैक स्यायी न मांगी ।।"

अकर्मण्य लोग दूसरे को अच्छा देखकर और अपने को अभावग्रस्त देखकर केवल यही सोचते है काश हमें यह साधन प्राप्त हो जाता, जो दूसरे के पास है मात्र साधन के लिए उत्सुक रहते है कर्म में बिल्कुल भी परिश्रम नहीं करना चाहते.।

17. अपणु कालु रूआउ हैक कालु हैंसाउ।

यदि अपना आदमी किसी का मन्दबुद्धि हो तो वह सदैव दुखदायी होता है क्योंकि हम अपनों को दुख में नहीं देख सकते जबकि दूसरी ओर जब मन्दबुद्धि दूसरे पक्ष का हो तो वह हँसाने का कारक बनता है।

18. ब्वारि बावा लाई बवारि बाबन खाई

उक्त लोकोक्ति तब प्रयुक्त होती है जब कोई व्यक्ति अपनी लाई हुई वस्तु का उपभोग स्वयं करता है।

19. सौण म्वारि सासु भादों ऐन आँसु।

Social Research Foundation

सास की मृत्यु श्रावण में हुई और आँसू भादों में आये अर्थात् समय पर कोई कार्य न करके मौका परस्त होकर कार्य करना समय पर किया गया कार्य ही उपयोगी सिद्ध होते हैं विलम्ब से किया गया कार्य उपलब्धि एवं उद्देश्य हीन होते है जो कि लोक में हास्य का कारक मात्र रह जाता है।

20. भिण्डी विराहु मुसु नी मारदन ।

ज्यादा बिल्लियाँ चूहे नहीं मार सकते कार्य सम्पन्नता के लिए विशाल जन समूह की आवश्यकता नहीं होती है बल्कि कुछ कर्मठ लोग ही कार्य सम्पन्न कर सकते है व्यक्तियों की अधिकता कार्य सम्पन्नता का संकेत नहीं है।

21. जन मयडु तन जयडु।

जैसी माँ वैसा बच्चा, अर्थात् लोक में प्रचलित यह उक्ति सकारात्मक, नकारात्मक दोनो अर्थों में प्रयुक्त होती है एक ओर जब हम अच्छे कर्मो की और प्रवृत्त होते है तब हमारे पूर्वजों को श्रेय दिया जाता है तथा दूसरी और यदि हम किसी अकर्त्तव्य की ओर उन्मुख होते है तब भी हमारे पूर्वजों को दोष दिया जाता है।

22. जख सौ सल्लि तख कभी न भल्लि।

अर्थात् जहाँ कई मिस्त्री होते हे वहाँ कभी अच्छा कार्य नहीं हो सकता लोक में यह लोकोपक्ति उन लोगों के लिए प्रयुक्त हुई है जो किसी कार्य को करने के लिए अधिक से अधिक लोगों की सलाह या सहायता लेते हैं जिसके परिणाम स्वरूप कार्य उचित ढंग से नहीं हो पाता।

23. जूँ डौरकु घघुरू न छोड़न

अर्थात् जू के डर रे घाघरा (वस्त्र) नहीं त्यागना चाहिए उपर्युक्त उक्ति सकारात्मक, नकारात्मक दोनों अर्थों में प्रयुक्त होती है एक ओर हमें प्रेम करने के लिए प्रेरित करती है तो दूसरी और यदि कोई व्यक्ति किसी कार्य को छोटी सी बाधा आने पर छोड़ दे तो हास्य व्यंग्य के माध्यम से उस व्यक्ति पर कटाक्ष हेतु प्रयुक्त होती है।

24. मैं भी राणी तू भी राणि कू कूटलु तौं सट्टि दाणि।

Social Research Foundation

अर्थात् मैं भी काम नहीं करुंगी और तू भी नहीं, यहाँ कर्ता के दोनो पक्ष समान है पहला पक्ष स्वयं को बड़ा मानता है किन्तु दूसरे पक्ष को भी छोटा नहीं समझता अतः कार्य के लिए अन्य पक्ष का विकल्प चाहती है।

25. पठालु फूटि पर ठकुराण नी ऊठि

अर्थात् पत्थर फट गया पर महारानी न उठी प्रस्तुत लोकोपक्ति किसी जिदद्ी औरत की और संकेत करती है जिसे मनाने के लिए बहुत प्रयास किए गए तथा उन प्रयासों के पश्चात् जटिल कार्य भी हो चुका पर वह नहीं मानती है ।

26. जु अपणु दाडु नी माठुलु त्यू हैकक कालु क्या काटलु।

अर्थात् जो व्यक्ति अपने दैनिक जीवन के कर्मो का निर्वाह स्वयं न कर सके वह दूसरों के कार्यो का निर्वाह कैसे कर सकता है अतः अकर्मण्य व्यक्ति से किसी भी काम की अपेक्षा नहीं करनी चाहिए।

27. पैली छै बूड नचाड़ तब अब त नाती भी ह्वेंगें।

अर्थात् किसी व्यक्ति के कार्य के साथ कारणों की वृद्धि पर प्रकाश डाला गया है कुछ लोग अपने काम में ज्यादा ही लीन रहते है ऐसे लोगों के कार्य में कारणों की थोड़ी सी वृद्धि इनके कार्यों को अनावश्यक विस्तार दे देता है।

28. राजा कु घौर मोत्यों कु अकाल

अर्थात् राजा के घर में मोतियों का अभाव प्रस्तुत उक्ति "नाम बड़े दर्शन छोटे" का भाव साम्य है जहाँ जिस वस्तु की उपलब्धता होनी चाहिए वहीं उस वस्तु का अभाव देखा जाता है।

29. सरि ढिबरि मूड़ि माडि पुछू दाँ लराट किराट

यदि कार्य सम्पन्नता की चरम सीमा पर हो तथा उसके प्रति हमारा उत्साह शून्य हो या कार्य पूर्ण होने वाला ही है और तभी बाधा आ जाय तो उक्ति प्रयुक्त होती है।

उद्देश्य

लोकोक्ति वह विधा है जो सहज एवं स्वाभाविक रुप सें हमें ज्ञान प्रदान करनें में सहायक है लोकानुभव पर आधारित लोकोपक्ति स्वास्थ्य,

Social Research Foundation

शिक्षा, राजनीति, समाज जीवन के हर पहलू को प्रभावित करती है एक ही लोकोक्ति सकारात्मक–नकारात्मक दोनो अर्थों में प्रयुक्त होती है तथा सन्दर्भ के आधार पर स्वतंत्र रूप से नए अर्थ की सृष्टि करती है यद्यपि समाज में लोकोक्तियों की प्रधानता आज भी विद्यमान है तथापि प्रान्तीय भाषा का मार्ग अवरूद्ध होने पर इनका अस्तित्व भी न रह पाएगा अतः गढ़वाली भाषा में लोकोक्तियाँ पर्याप्त एवं समृद्व है लोकोक्ति मानव के (शारीरिक एवं मानसिक) स्वास्थ्य हेतु लाभकारी हैं।

अंत टिप्पणी

1. *डॉ गोविन्द चातक : गढ़वाल साहित्य और संस्कृति, तक्षशिला प्रकाशन नई दिल्ली, प्रथम संस्करण : 2008 पृष्ठ संख्या – 115.*
2. *सुरेश ममगांई : गढ़वाली भाषा और साहित्य, प्रथम संस्करण : 2008, नवराज प्रकाशन भजनपुरा दिल्ली पृष्ठ संख्या – 182,*
3. *सुरेश ममगांई : गढ़वाली भाषा और साहित्य, प्रथम संस्करण : 2008, नवराज प्रकाशन भजनपुरा दिल्ली पृष्ठ संख्या – 182,*
4. *डॉ गोविन्द चातक : गढ़वाल साहित्य और संस्कृति, तक्षशिला प्रकाशन नई दिल्ली, प्रथम संस्करण : 2008 पृष्ठ संख्या – 120.*

Social Research Foundation

Musical Instrument & Indian Film Industry
ISBN: 978-81-947902-6-6

भारतीय संगीत के परिप्रेक्ष्य में फ्यूजन और नवीन प्रयोगों की संभावनाएँ

आलाप देवड़ा
शोधछात्र,
संगीत विभाग,
राजस्थान विश्वविद्यालय
जयपुर, राजस्थान, भारत

Social Research Foundation

सारांश

कोई भी कला हो उसमें नए प्रयोग की बड़ी अहम भूमिका रहती है। दरअसल, उन्हीं के कारण हम अनुभवों के नए क्षेत्रों में प्रवेश कर पाते हैं । वे हमारे सुनने और समझने की क्षमता को और विस्तृत करता है, किंतु दुखद सच्चाई यह भी है कि शुरू में नए प्रयोगों और नई विधियों को हमेशा विरोध का सामना करना पड़ता है। नये प्रयोग प्राय: प्रतिहास का विषय भी बनते हैं । आधुनिक कला में अमूर्तन अभी भी बहुतेरे लोगों के लिए प्रतिहास का साधन ही तो है। जबकि स्वयं कला जगत में सुधी कला प्रेमियों की दुनिया में, श्रोताओं में उसके प्रति सराहना का भाव बढ़ता गया है।

मुख्य शब्द – नवीन प्रयोग, फ्यूजन, वैश्वीकरण।

प्रस्तावना

परिवर्तन सृष्टि का नियम है। आदि काल से ही संगीत जगत में अलग–अलग पहलुओं में बदलाव होते रहे हैं । चूँकि संगीत को मानव ने अपने जन–जीवन से जोड़कर अपने मनोभावों को व्यक्त करने का साधन बनाया है, तो संगीत में परिवर्तन आना तो स्वाभाविक है। बदलाव अच्छे

होते हैं, बदलाव हैं तो इसका मतलब है कि नया आने की उम्मीद है, जो बहुत खूबसूरत भी हो सकता है। आज वेस्ट और ईस्ट का म्यूजिक साथ–साथ एक ही स्टेज में अगर नए सुरीले सुरों के साथ उतर रहा है तो यह बढिया है। भारतीय संगीत में गहराई है। इसकी जितनी गहराई तक आप जाएंगे आपको संगीत के उतने ही नए आयाम नजर आएंगे। अगर संगीत के मंच पर नया कुछ उतर रहा है तो समझ लीजिए आपको नया खजाना मिला है। समय के प्रवाह में संगीत अपने नए– नए आयाम पर पहुँचता गया और और मन मस्तिष्क को आनंदित करने के लिए अलग –अलग रूपों में प्रस्तुत किया जाता रहा है।

"भारत की संगीतकला अत्यंत प्राचीन काल से जिस प्रकार विकसित होती चली आ रही है वह कलाओं के इतिहास में एक अनोखी घटना है। संसार के इतिहास में ऐसी निरंतरता दुर्लभ है।" [1]

फ्यूजन आज के दौर में बहुत जोर पर है। जिसमें दो अलग–अलग संस्कृतियों का मिश्रण किया जा रहा है। आज भारतीय तथा पाश्चात्य संगीत के मिश्रण को फ्यूजन की परिभाषा दी गई है।

यह सर्वविदित है कि संगीत सनातन है और उसमें प्रयोगधर्मिता शुरू से हो रही है, प्रयोग ना हो तो परम्परा समृद्ध नहीं रहती । प्रयोग में जनरुचि जितनी अधिक महत्त्व रखती है। संगीत में साधना का पक्ष भी उतना ही अधिक महत्त्व रखता है इसीलिए मिश्रण उतना ही करें जिससे की उसका अस्तित्व बना रहे। अत: मिश्रण में अस्तित्व नहीं खोना चाहिए।

प्रत्येक राष्ट्र का संगीत उसके सांस्कृतिक उत्थान व पतन का द्योतक होता है। ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर ज्ञात होता है कि उन राष्ट्रों का सांस्कृतिक विकास अधिक गतिमान रहा है, जिनका संपर्क अन्य राष्ट्रों से निरन्तर बना रहा है क्योंकि उनमें संस्कृति के पारस्परिक आदान–प्रदान के क्रम ने नव–नवीन विशेषताओं के उन्मेष की प्रचुर संभावनाएँ निर्मित की। इसी पारस्परिक विनिमय ने समय–समय पर मिश्रित संस्कृति को जन्म दिया, जो निश्चित रूप से प्रगतिशील था। मानव समूह

Social Research Foundation

जब एक स्थान से दुसरे स्थान पर गए, तो यह सांस्कृतिक सम्पदा भी उनके साथ भ्रमण करती रही। [2]

दो सुन्दर संगीत धाराओं का सुन्दर सम्मिश्रण होता है, फ्यूजन। जैसे दो या तीन नदियाँ मिल कर त्रिवेणी संगम बनती है और वह स्थान तीर्थ बन जाता है, वैसे ही दो-तीन संगीत शैलियों के गुण मिलाकर, उनकी अच्छी बातों का समावेश, किसी एक रचना में कर उसका अत्यंत ही मधुर, प्रभावी प्रस्तुतीकरण होता है फ्यूजन।

फ्यूजन में स्वर माधुर्य होता है, कल्पनाशीलता होती हैं, लयात्मकता होती है, और वह बात होती है जो श्रोताओं के हृदय को छु जाए, जो संगीत की अधिक समझ रखने वालों को भी अपनी भावपूर्ण स्वर लहरियों में भिगो दे, साथ संगीत के जानकारों का हृदय भी अपनी कलात्मकता और गुणात्मकता के बलबूते पे लुभाते है।

फ्यूजन संगीत की परम्परा भारतीय संगीत में 1955 में 'पं. रविशंकर' और 'उस्ताद अली अकबर खां' ने की थी। 1960 से 70 दशक तक इसका प्रचार प्रसार विशेष रूप से बढ़ने लगा । उस समय इसको Neo Fusion कहा जाता था।

1955 में यदि भारतीय शास्त्रीय संगीत का पश्चिम में पदार्पण हुआ तो 1967 वह वर्ष था जब वैकल्पिक विश्व दृष्टिकोण की तलाश में संगीतकार एशिया पहुंचे विशेष रूप से भारत की आध्यात्मिक और सुरुचिपूर्ण परंपराओं की खोज के लिए। [3]

1976 में एक पहला अलबम आया जिसमें जॉन मैकलॉघलिन के साथ शक्ति, ने इंडो–वेस्टर्न फ्यूजन संगीत को दुनिया के लोकप्रिय शैलियों में से एक के रूप में प्रस्तुत किया, जो कलाकारों और दर्शकों दोनों के संदर्भ में था। 'शक्ति' द महाविष्णु ऑर्केस्ट्रा और क्विंटेसेंस जैसे प्रोजेक्ट और बैंड के इंडो–वेस्टर्न फ्यूजन संगीत में क्रांति ला दी। इस अलबम ने एक नई शैली पैदा की जिसमें सार्वभौमिक अपील थी। [4]

Social Research Foundation

प्राचीनकाल से आधुनिक काल तक संगीत के क्रियात्मक पक्ष के साथ–साथ शास्त्रीय पक्ष में भी अनेकों परिवर्तन आये है। प्राचीन एवं आधुनिक संगीत के तुलनात्मक अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि वर्तमान संगीत का स्वरूप पहले की अपेक्षा भिन्न है, किन्तु इसका अभिप्राय यह नहीं कि आधुनिक संगीत प्राचीन परम्परा अथवा आधार से भिन्न हो गया है। बल्कि समय के साथ आये परिवर्तनों के कारण उसका स्वरूप बदल गया है किन्तु उसके शास्त्रानुमोदित तत्व आज भी अस्तित्व में हैं।

संगीत के इतिहास का अगर हम अध्ययन करे तो यह स्पष्ट होता है कि दुनिया का हर संगीतकार अपने संगीत में कुछ विविधता या नयापन लाने का प्रयास करता है। परम्परा, सृजनात्मकता और नव्यता ही हमारे संगीत की जीवन्तता का राज है। [5]

पद्म भूषण और पद्मश्री विजेता पंडित विश्व मोहन भट्ट को उन संगीतकारों में गिना जाता है, जिनका भारतीय शास्त्रीय संगीत मे बड़ा योगदान हैं। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर ग्रेमी अवार्ड से नवाजे गये पं. विश्व मोहन भट्ट जयपुर ही नहीं बल्कि हिंदुस्तान के गौरव है। उन्होंने न केवल भारतीय शास्त्रीय संगीत को व्यापक रूप दिया है, बल्कि उन्होंने मोहन–वीणा के रूप में भारतीय और पश्चिमी शास्त्रीय संगीत के अनूठे मिश्रण की संभावना को भी जन्म दिया है।

हिन्दुस्तानी संगीत का ढांचा कोई ऐसी इमारत की तरह नहीं है, जो एक बार निर्मित हो गयी सो हो गयी। संगीत हमेशा से ही परिवर्तनशील रहा है तथा इसमें निरंतर परिवर्तन अपेक्षित है। [6]

प्राचीन समय में वैदिक मंत्रो के पठन के लिए उदात्त और अनुदात्त एवं स्वरित केवल तीन भाषिक स्वर थे। यही स्वर वैदिक काल में सांगीतिक स्वरों में परिवर्तित हो गए एवं सामवैदिक ऋचाओं का गान ग्रन्थ नाट्यशास्त्र है। सामगान के साथ– साथ लौकिक संगीत की परम्परा प्रारंभ हुई, जिसे गान्धर्व कहा गया। उपनिषदों, शिक्षा–ग्रंथो रामायण, महाभारत, पुराणों, बौद्ध एवं जैन ग्रंथों में सामगान के साथ– साथ गान्धर्व का भी

Social Research Foundation

उल्लेख मिलता है। लेकिन सामगान धीरे–धीरे क्षीण पड़ने लगा और गान्धर्व ने साम का स्थान ले लिया।

'भरत' ने 'नाट्यशास्त्र' में केवल गान्धर्व संगीत का ही वर्णन किया है। इसी गान्धर्व को पाश्चात्यावर्ती ग्रन्धकारों ने मार्गी संगीत की संज्ञा से संबोधित किया जो कि कठोर और नियमबद्ध था।'भरत' द्वारा वर्णित समस्त संगीत गान्धर्व था, परन्तु बाद में उसमें शिथिलता आने लगी ।इसमें कोई संदेह नहीं है कि संगीत एक परिवर्तनशील कला है। इसलिए समयानुसार उसमें बराबर 'परिवर्तन' होते रहने चाहिये । संगीत का मुख्य उद्देश्य मन को प्रसन्न करना है।

संगीत के क्षेत्र में प्रयोग करने को बुराई के तौर पर नहीं देखा जाना चाहिये बल्कि प्रयोगों के द्वारा परम्परा को और अधिक समृद्ध और विकसित किया जाना चाहिये। संगीत कला या किसी भी अन्य कला में यदि प्रयोग नही किया जाये तो उसकी परम्परा समृद्ध नहीं होती। इसीलिए परम्परा की समृद्धि या विकास के लिए प्रयोग अति आवश्यक है।

ध्रुवपद जैसी महान और पुरातन विधा जो पूर्ण शास्त्रोक्त विधा है, में नवाचार का श्रेय वरिष्ठ ध्रुवपदाचार्य पं. लक्ष्मण भट्ट तैलंग को जाता है। साथ ही पंडित लक्ष्मण भट्ट तैलंग ने ध्रुवपद में विविध शैलियों का समावेश करते हुए 'पचरंग' नामक रचना का सृजन किया जो संगीत जगत को पंडित जी की ओर से अनुपम भेंट है।

विविध परिवर्तनों, परिवेश, समसामयिकता मुद्दे, विकास एवं आवश्यकताओं के आधार पर कला के रूप में परिवर्तन होता आया है। आज के समय में जब महिलाएं हर कार्य में पुरुष से कंधे से कन्धा मिला कर चल रही है तो ध्रुवपद – धमार जैसी महत्वपूर्ण विधा में महिलायें कैसे पीछे रह सकती है, ऐसे में ध्रुवपद – धमार गायन शैली में महिलाओं का अभिर्भाव होना भी स्वाभाविक था, और इस शैली को राजस्थान की प्रथम ध्रुवपद – गायिका का खिताब जयपुर की डॉ. मधु भट्ट तैलंग के नाम है।

अंग्रेजी में एक कहावत है "Before you break rules you know the rules." अर्थात् नियमों को तोड़ने से पहले उसके बारे में जानना अति

Social Research Foundation

आवश्यक है। नवीनता कोई बुरी चीज नहीं है परन्तु किसी भी तरह का प्रयोग करने से पूर्व हमें इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि प्रयोग करने के पीछे हमारा उद्देश्य क्या है ?

तो यह अवश्य सफल होगा। कहा भी गया है कि कोई भी जलधारा आकर गंगा में मिले तो वह गंगा जल ही कहलायेगी ।ठीक उसी प्रकार भारतीय संगीत में कोई नवीन प्रयोग करने से अगर कुछ अच्छा हो रहा हो और उसका उद्देश्य अवश्य ही सफल होगा ।

भारतीय शास्त्रीय संगीत जगत को सात्विक वीणा कि सौगात देने वाले सलिल भट्ट देश के बहुप्रतिष्ठित संगीतमय भट्ट परिवार कि दसवी पीढ़ी के प्रतिनिधि कलाकार हैं। ग्लोबल इन्डियन कि उपाधि से विभूषित सलिल भट्ट समूचे विश्व में अपने हुनर की छाप छोड़ रहें हैं । फ्यूजन संगीत के लिए इनका योगदान अद्वितीय है।

जयपुर में जन्मे प्रसिद्ध सितारवादक पंडित कृष्ण मोहन भट्ट जिन्होंने देश ही नहीं विदेशों में भारतीय संगीत को पहचान दिलाई है और विदेशी संगीतकारों के साथ मिलकर कई शोज और एलबम निकाले है।

जॉर्ज हैरिसन के ही प्रभाव ने रॉक संगीत की एक नई विधा को जन्म दिया, 'रागा रॉक'। सत्तर के दशक में रागा रॉक की परंपरा को आगे बढ़ाया ब्रिटिश गिटारिस्ट जॉन मेकलॉफिन और उनके बैंड शक्ति ने। जॉन मेकलॉफिन ने जाज से प्रभावित रागा रॉक का एक नया प्रारूप तैयार किया। सत्तर के दशक के अंत में शक्ति बैंड बिखर गया। लगभग बीस साल की चुप्पी के बाद 1997 में जॉन मेकलॉफिन ने उस्ताद जाकिर हुसैन के साथ मिलकर एक नया बैंड बनाया 'रेमेबेरिंग शक्ति', जिसमें शंकर महादेवन, यू श्रीनिवास और वी सेल्वागणेश ने शामिल होकर उसे एक पंचक का रूप दिया। प्रसिद्ध बांसुरी वादक हरिप्रसाद चौरसिया भी इस बैंड से कुछ समय तक जुड़े रहे। रागा रॉक की परंपरा ब्रिटेन में आज भी जारी है। वह संगीत है हिप–हॉप से प्रभावित भारतीय संगीत।

Social Research Foundation

मनुष्य मात्र में सौन्दर्य का आकर्षण स्वाभाविक है। इसी दृष्टि से संगीत का मानव जीवन में महत्वपूर्ण स्थान है। मनुष्य सदा सुख की खोज में लगा है । संगीत उसके लिए प्रभावी साधन बन सकता है।

संगीत में वैश्वीकरण का यह अभिप्राय बिल्कुल नहीं है कि हमारी परम्परा नष्ट हो गई और नई पद्धतियों का चलन बढ़ गया है। इतिहास गवाह है कि संस्कृति कभी भी नष्ट नही होती लेकिन उसमें कुछ–न–कुछ परिवर्तन लगातार दिखाई पड़ता रहता है। संगीत शास्वत है, संगीत जब से उत्पन्न हुआ है, तभी से यह एक वैश्विक कला के रूप में पल्लवित हुआ है। हर चीज के दो पहलू होते है, लेकिन आज वैश्वीकरण की अत्यंत वेगवती प्रक्रिया के फलस्वरूप हमारे भारतीय संगीत पर जो भी प्रभाव पड़ा है, उससे संगीत में परिवर्तन तो परिलक्षित होती है परन्तु उससे गुणात्मक उपलब्धि भी मिली है। भारतीय संगीत को प्रचार– प्रसार ही मिला है। भारतीय संगीत का विश्व स्तर पर विस्तार हुआ है।

सामाजिक स्थिति सदैव एक सी रहे है सम्भव नहीं है। समय के साथ जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में परिवर्तन होना अवश्यंभावी है। परिवर्तन या गतिशीलता विकास की एक स्वाभाविक प्रक्रिया है, जिसे रोका नहीं जा सकता। वही परिवर्तन समाज का उत्थान कर सकता है जो सुनियोजित रूप में हो, लेकिन एक दिशाहीन परिवर्तन से परम्परा का विनाश संभव है। परिवर्तन को उतना ही अपनाना उचित है, जिससे हमारी मौलिकता अथवा परम्परा का स्वरूप न बिगड़े।

अध्ययन का उद्देश्य

बदलते समय के साथ भारतीय संगीत में भी नवीन प्रयोगों और फ्यूजन जैसे नवाचारों की वस्तुस्थिति इस लेख में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। नवाचार की संभावनाएं सभी क्षेत्रों में रहती है, ठीक उसी प्रकार भारतीय संगीत में भी नवीन प्रयोगों की संभावनाएं है।

निष्कर्ष

समय समय पर भारतीय संगीत में परिवर्तन होते रहे हैं। इन्हीं परिवर्तनों के आधार पर संगीतकारों और विद्वानों ने संगीत के क्षेत्र में कई

Social Research Foundation

नये प्रयोग किए और इस तथ्य को प्रमाणित किया कि संगीत नवीन प्रयोगों की संभावनाए है और इन प्रयोगों के माध्यम से संगीत की लोकप्रियता और बढ़ सकती है।इन नवीन प्रयोगों में फ्यूजन का नाम भी विशेष रूप से लिया जा सकता है।

सुझाव

इतिहास का अध्ययन करने से यह ज्ञात होता है कि समाज में जो भी उथल–पुथल हुआ, उसके पीछे उस विचारधारा की प्रधानता रही। साथ ही हमें अपनी जड़ों, अपने पूर्वजों को कभी नहीं भूलाना चाहिए । अगर हम ऐसा करते है तो हम दुनिया के सामने अपनी ही पहचान खो बैठते हैं । आज हाई–टेक्नोलोजी, अत्याधुनिक वाद्यों, तेज लय और ताल की चमक–दमक के सामने भुला– बिसरा जमाना शायद बहुत फीका लगने लगा हो, लेकिन वह हमारा इतिहास है, और उसे संजोकर, सहेजकर रखना हमारा कर्तव्य भी है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *भारतीय संस्कृति के मौलिक तत्वपृ. सं. 109*
2. *डॉ. इन्दु शर्मा 'सौरभ' 'भारतीय फिल्म संगीत में ताल–समन्वय' पृ. सं. 183*
3. *मधुश्री चटर्जी भारत संदर्श 24 अंक 1 ध्2010, पृ. सं. 35*
4. *http://www-fridaynightoriginals-com/blog/the&sound&of&fusion/*
5. *संगीत कला विहार जनवरी 2017*
6. *कु. निशा श्रीवास्तव राग संगीत कि उत्पत्ति एवं विकास का विश्लेषणात्मक अध्ययन पृ. 11, शोध प्रबंध, 1998*

Social Research Foundation

Musical Instrument & Indian Film Industry
ISBN: 978-81-947902-6-6

तबले के नचकरन बाज में प्रतिबिम्बित कायदा

कल्याणी गुप्ता
शोध छात्रा
संगीत विभाग
दयालबाग ऐजूकेशनल इन्स्टीट्यूट,
दयालबाग, आगरा, उ0प्र0, भारत

Social Research Foundation

सारांश

वर्तमान में तबला वादकों के मान्यता प्राप्त छः घराने हैं– दिल्ली घराना, अजराड़ा घराना, लखनऊ घराना, फरुखाबाद घराना, बनारस घराना, पंजाब घराना। तबले के विभिन्न घरानों को उसकी वादन शैली के आधार पर मुख्य दो बाजों में विभक्त किया गया है– 1) पश्चिम बाज, 2) पूरब बाज।

प्रस्तावना

पश्चिम बाज के अन्तर्गत दिल्ली व अजराड़ा घराने की वादन शैली आती है तथा पूरब बाज के अन्तर्गत लखनऊ, फरुर्खाबाद व बनारस घराने की वादन शैली आती है। इसके अतिरिक्त पंजाब एक स्वतन्त्र बाज है। पूरब बाज के तीनों घरानों में लखनऊ घराने का स्थान सर्वोपरि है तथा पूरब बाज का प्रथम घराना है– लखनऊ घराना।

दिल्ली घराने के संस्थापक उस्ताद सिद्दार खाँ ढाढ़ी के तीसरे पुत्र के तीन पुत्र हुए– उस्ताद मोदू खाँ, उस्ताद बख्शू खाँ और उस्ताद मक्कू खाँ। उनका तबले के प्रचार–प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

उस्ताद मोदू खाँ और उस्ताद बख्शू खाँ ने लखनऊ के सांगीतिक परिवेश के आधार पर दिल्ली बाज में आवश्यकतानुसार परिवर्तन कर लखनऊ घराने की स्थापना की।

लखनऊ घराने की परम्परा का विकास अवध के अन्तिम नवाब वाजिद अली शाह के शासन में हुआ। लखनऊ में उन दिनों ख्याल, ठुमरी, टप्पा गायन शैली तथा कत्थक नृत्य के साथ संगति के लिए लखनऊ में प्रमुख ताल वाद्य पखावज था, तथा इन जोरदार व गम्भीर वादन शैली के साथ संगत हेतु दिल्ली घराने की मुलायम व लचीली वादन शैली में आवश्यकतानुसार परिवर्तन कर मोदू खाँ, बख्शू खाँ ने लखनऊ घराने की स्थापना की।

लखनऊ शहर अपनी खास नजाकत और तहजीब वाली बहुसांस्कृतिक खूबी, दशहरी आम के बागों तथा चिकन की कढ़ाई के काम के लिए जाना जाता है। शहर के बाचों बीच 'गोमती नदी' बहती है। जो लखनऊ की संस्कृति का हिस्सा है। लखनऊ हमेशा एक बहुसांस्कृति शहर रहा है।

लखनऊ घराने के शिष्य–परम्परा में उस्ताद आबिद हुसैन खाँ, उस्ताद वाजिद हुसैन, उस्ताद आफ़ाक हुसैन खाँ, रज़ा हुसैन, रहीमबख्श रुग्गाजी, राम कन्हाई (त्रिपुरा), फकीर साहब, उस्ताद शेख दाऊद खाँ (हैदराबाद), गंगादयाल पाण्डे, तथा वर्तमान में उस्ताद इल्मास हुसैन खाँ, पं० सपन चौधरी, नलिन चौधरी इत्यादि कलाकारों का नाम आता है।

हिन्दुस्तानी संगीत के प्रतिष्ठित एवं बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न, सुयोग्य कलाकार तथा उत्कृष्ट सृजनधर्मी उस्ताद आफ़ाक हुसैन खाँ साहब का नाम लखनऊ घराने के प्रतिष्ठित कलाकारों में लिया जाता है। उस्ताद आफ़ाक हुसैन खाँ साहब को लखनऊ घराने का खलीफा भी कहा जाता है। इस घराने की अन्य शिष्यों में पं० पंकज कुमार चौधरी (भातखण्डे), प्रवीण कुमार मित्रा, पवन बरदोलाई, नरेन्द्र गुनेरत्ना (श्रीलंका) इत्यादि है।

लखनऊ ठुमरी गायन शैली जनक व नृत्य का गढ़ रहा है। लखनऊ घराने में मुक्त प्रहार से बजने वाले खुले बोलों की प्रधानता रहती

Social Research Foundation

ISBN: 978-81-947902-6-6

है। इसी कारण यहां बजने वाली रचनाएं जोरदार और गूँजमय होती है। चाँट व किनार के साथ स्याही व लव का भी प्रयोग होता है। दोनों अँगुलियों के स्थान पर पाँचों अंगुलियों का प्रयोग किया जाता है। बायें पर अँगूठे द्वारा मींड, घसीट या घिस्सा उत्पन्न करने की प्रथा है।

लखनऊ घराने में जहां पखावज वादन शैली की भाँति रेला, रौ, परन, चक्रदार, फरमाइशी आदि रचनाएं बजाई जाती है। वहीं कायदा, गत–कायदा इत्यादि रचनाओं का भी वादन किया जाता है।

कायदा

कायदा अरबी भाषा के शब्द **'कैद'** से बना है। इसका शाब्दिक अर्थ है **'बन्धन'** या **'अवरोध'**। कायदा स्वतन्त्र वादन में प्रयोग किया जाता है। कहा जाता है कि 'बोलो का वह समूह जिसकी रचना ताल व उसके विभागों के अनुसार हो तथा जिसका पर्याप्त विस्तार हो सके 'कायदा' कहलाता है।

कायदा तबले में प्रयुक्त होने वाले मूल वर्णों द्वारा निर्मित उस बन्दिश को कहते है, जो मात्रा, ताली, खाली और विभाग पर आधारित है तथा जिसका अधिक–से–अधिक विस्तार होना संभव हो और उसके अभ्यास द्वारा हाथों को सही ढंग से गतिशील किया जा सके तथा तबला वादन की कला अच्छी तरह आ जाये।

कायदे की संरचना में मुख्य दो भाग पहला भरी तथा दूसरा खाली का होता है। कायदे की रचना में ताल का स्वरुप स्पष्ट दिखाई देता है। कायदे का समापन तिहाई से किया जाता है।

लखनऊ घराने के कुछ कायदें इस प्रकार हैं–

प्रस्तुत कायदा तीनताल में निबद्ध है। यह चतस्त्र जाति का कायदा है। इसमें दायें–बायें के बोलों का सुन्दर सामंजस्य है। जो कि सौन्दर्यवृद्धि करता है। 'न' वर्ण के वादन में अनामिका अँगुली का प्रयोग किया गया है। यह लखनऊ घराने का प्रचिलत कायदा है। लखनऊ घराने के आफाक़ हुसैन खाँ साहब, उस्ताद इल्मास हुसैन खाँ इत्यादि कलाकार

Social Research Foundation

अपने स्वतन्त्र वादन मे इसे प्रस्तुत करते है। लखनऊ घराने की सभी विशेषताएं इसमें निहित है।

कायदा नं०–1

धाऽतिर	किटतक	धाऽऽऽ	धाऽतिर	किटतक	धाऽऽऽ	धाऽतिर	किटतक
धाऽतिर	किटधाऽ	तिरकिट	धाऽतिर	घेड़नग	दिनतक	तिरतिर	किटतक
ताऽतिर	किटतक	ताऽऽऽ	ताऽतिर	किटतक	ताऽऽऽ	ताऽतिर	किटतक
धाऽतिर	किटधाऽ	तिरकिट	धाऽतिर	घेड़नग	दिनतक	धिरधिर	किटतक

पल्टा नं०–1

धाऽतिर	किटतक	धाऽऽऽ	धाऽतिर	किटतक	धाऽऽऽ	धाऽतिर	किटतक
धाऽतिर	किटधाऽ	तिरकिट	धाऽतिर	घेड़नग	दिनतक	तिरतिर	किटतक
ताऽतिर	किटतक	ताऽऽऽ	ताऽतिर	किटतक	ताऽऽऽ	ताऽतिर	किटतक
धाऽतिर	किटधाऽ	तिरकिट	धाऽतिर	घेड़नग	दिनतक	धिरधिर	किटतक

पल्टा नं०–2

धाऽतिर	किटतक	धाऽतिर	किटतक	धाऽऽऽ	धाऽतिर	किटतक	धाऽऽऽ
धाऽतिर	किटधाऽ	तिरकिट	धाऽतिर	घेड़नग	दिनतक	तिरतिर	किटतक
ताऽतिर	किटतक	ताऽतिर	किटतक	ताऽऽऽ	ताऽतिर	किटतक	ताऽऽऽ
धाऽतिर	किटधाऽ	तिरकिट	धाऽतिर	घेड़नग	दिनतक	धिरधिर	किटतक

पल्टा नं०–3

धाऽतिर	किटधाऽ	तिरकिट	तिरकिट	धाऽतिर	किटधाऽ	तिरकिट	तिरकिट
धाऽतिर	किटधाऽ	तिरकिट	धाऽतिर	घेड़नग	दिनतक	तिरतिर	किटतक
ताऽतिर	किटताऽ	तिरकिट	तिरकिट	ताऽतिर	किटताऽ	तिरकिट	तिरकिट
धाऽतिर	किटधाऽ	तिरकिट	धाऽतिर	घेड़नग	दिनतक	धिरधिर	किटतक

पल्टा नं०–4

घेड़नग	दिनतक	धिरधिर	किटतक	घेड़नग	दिनतक	धिरधिर	किटतक
धाऽतिर	किटधाऽ	तिरकिट	धाऽतिर	घेड़नग	दिनतक	तिरतिर	किटतक
केड़नक	तिनतक	तिरतिर	किटतक	केड़नक	तिनतक	तिरतिर	किटतक
धाऽतिर	किटधाऽ	तिरकिट	धाऽतिर	घेड़नग	दिनतक	धिरधिर	किटतक

तिहाई

घेड़नग	दिनतक	धिरधिर	किटतक	धाऽऽऽ	धिरधिर	किटतक	धाऽऽऽ
धिरधिर	किटतक	धाऽऽऽ	घेड़नग	दिनतक	धिरधिर	किटतक	धाऽऽऽ

Social Research Foundation

धिरधिर किटतक धाऽऽऽ धिरधिर | किटतक धाऽऽऽ घेड़नग दिनतक
धिरधिर किटतक धाऽऽऽ धिरधिर | किटतक धाऽऽऽ धिरधिर किटतक धा

प्रस्तुत कायदा 'तबला पुराण' पुस्तक से प्राप्त हुआ है। यह तीनताल में निबद्ध है। यह चतस्त्र जाति का कायदा है। यह कायदा लखनऊ घराने के प्रसिद्ध एवं प्रचलित कायदों में से एक है। लखनऊ घराने के अधिकांश कलाकार व उस्ताद आबिद हुसैन खाँ साहब अपने स्वतन्त्र वादन में इस कायदों को बजाते थे। इसमें 'ते' का निकास मध्यमा व अनामिका अंगुली को मिलाकर किया जाता है। यह कायदा खुला एवं जोरदार बजाया जाता है।

कायदा नं०–2

घेड़नग तेटेतेटे घेड़नग दिनतक | तेटेघेड़ नगतेटे घेड़नग तिनतक
केड़नक तेटेतेटे केड़नक तिनतक | तेटेघेड़ नगतेटे घेड़नग दिनतक

पल्टा नं०–1

घेड़नग तेटेतेटे घेड़नग तेटेतेटे | घेड़नग तेटेतेटे घेड़नग दिनतक
घेड़नग तेटेतेटे घेड़नग दिनतक | तेटेघेड़ नगतेटे घेड़नग तिनतक
केड़नक तेटेतेटे केड़नक तेटेतेटे | केड़नक तेटेतेटे केड़नक तिनतक
घेड़नग तेटेतेटे घेड़नग दिनतक | तेटेघेड़ नगतेटे घेड़नग दिनतक

पल्टा नं०–2

धाऽघेड़ नगघेड़ नगतेटे घेड़नग | धाऽघेड़ नगघेड़ नगतेटे घेड़नग
घेड़नग तेटेतेटे घेड़नग दिनतक | तेटेघेड़ नगतेटे घेड़नग तिनतक
ताऽकेड़ नककेड़ नकतेटे केड़नक | ताऽकेड़ नककेड़ नकतेटे केड़नक
घेड़नग तेटेतेटे घेड़नग दिनतक | तेटेघेड़ नगतेटे घेड़नग दिनतक

पल्टा नं०–3

तेटेघेड़ नगतेटे घेड़नग दिनतक | तेटेघेड़ नगतेटे घेड़नग दिनतक
घेड़नग तेटेतेटे घेड़नग दिनतक | तेटेघेड़ नगतेटे घेड़नग तिनतक
तेटेकेड़ नकतेटे केड़नक तिनतक | तेटेकेड़ नकतेटे केड़नक तिनतक
घेड़नग तेटेतेटे घेड़नग दिनतक | तेटेघेड़ नगतेटे घेड़नग दिनतक

पल्टा नं०–4

तेटेघेड़ नगतेटे घेड़नग दिनतक | तेटेतेटे घेड़नग घेड़नग दिनतक
घेड़नग तेटेतेटे घेड़नग दिनतक | तेटेघेड़ नगतेटे घेड़नग तिनतक

Social Research Foundation

तेटेकेड़	नकतेटे	केड़नक	तिनतक	तेटेतेटे	केड़नक	केड़नक	तिनतक
घेड़नग	तेटेतेटे	घेड़नग	दिनतक	तेटेघेड़	नगतेटे	घेड़नग	दिनतक

तिहाई

तेटेघेड़	नगतेटे	घेड़नग	दिनतक	धाऽऽऽ	घेड़नग	दिनतक	धाऽऽऽ
घेड़नग	दिनतक	धाऽऽऽ	तेटेघेड़	नगतेटे	घेड़नग	दिनतक	धाऽऽऽ
घेड़नग	दिनतक	धाऽऽऽ	घेड़नग	दिनतक	धाऽऽऽ	तेटेघेड़	नगतेटे
घेड़नग	दिनतक	धाऽऽऽ	घेड़नग	दिनतक	धाऽऽऽ	घेड़नग	दिनतक

धा

प्रस्तुत कायदा तीनताल में निबद्ध है। यह चतस्त्र जाति का कायदा है। लखनऊ घराने की अधिकांश विशेषताओं का निर्वाह करता है। इस कायदे में प्रयुक्त दिनतक बोल का प्रयोग लखनऊ घराने की अधिकांश रचनाओं में किया जाता है। तक तक के वादन में 'लौ' का प्रयोग किया गया है। दिनतक बोल में 'न' वर्ण के वादन में अनामिका अंगुली का प्रयोग भी किया गया है। दायें–बायें के बोलों का सुन्दर सामंजस्य है, जो कि सौन्दर्य वृद्धि करता है।

कायदा नं०–3

तकदिन	तकतक	दिनतक	दिनतक	तेटेतेटे	घेघेतेटे	घेघेनग	दिनतक
तकतिन	तकतक	तिनतक	तिनतक	तेटेतेटे	घेघेतेटे	घेघेनग	दिनतक

पल्टा नं०–1

तकदिन	तकतक	दिनतक	दिनतक	तकदिन	तकतक	दिनतक	दिनतक
तकदिन	तकतक	दिनतक	दिनतक	तेटेतेटे	घेघेतेटे	घेघेनग	तिनतक
तकतिन	तकतक	तिनतक	तिनतक	तकतिन	तकतक	तिनतक	तिनतक
तकदिन	तकतक	दिनतक	दिनतक	तेटेतेटे	घेघेतेटे	घेघेनग	दिनतक

पल्टा नं०–2

तकदिन	तकतक	तकदिन	तकतक	तकदिन	तकतक	दिनतक	दिनतक
तकदिन	तकतक	दिनतक	दिनतक	तेटेतेटे	घेघेतेटे	घेघेनग	तिनतक
तकतिन	तकतक	तकतिन	तकतक	तकतिन	तकतक	तिनतक	तिनतक
तकदिन	तकतक	दिनतक	दिनतक	तेटेतेटे	घेघेतेटे	घेघेनग	दिनतक

Social Research Foundation

पल्टा नं०–3

घेघेतेटे	घेघेनग	दिनतक	घेघेतेटे	घेघेनग	दिनतक	घेघेनग	दिनतक
तकदिन	तकतक	दिनतक	दिनतक	तेटेतेटे	घेघेतेटे	घेघेनग	तिनतक
केकेतेटे	केकेनक	तिनतक	केकेतेटे	केकेनक	तिनतक	केकेनक	तिनतक
तकदिन	तकतक	दिनतक	दिनतक	तेटेतेटे	घेघेतेटे	घेघेनग	दिनतक

पल्टा नं०–4

दिनतक	दिनतक	घेघेनग	दिनतक	दिनतक	दिनतक	घेघेनग	दिनतक
तकदिन	तकतक	दिनतक	दिनतक	तेटेतेटे	घेघेतेटे	घेघेनग	तिनतक
तिनतक	तिनतक	केकेनक	तिनतक	तिनतक	तिनतक	केकेनक	तिनतक
तकदिन	तकतक	दिनतक	दिनतक	तेटेतेटे	घेघेतेटे	घेघेनग	दिनतक

तिहाई

तेटेतेटे	घेघेतेटे	घेघेनग	दिनतक	धाऽऽऽ	घेघेनग	दिनतक	धाऽऽऽ
घेघेनग	दिनतक	धाऽऽऽ	तेटेतेटे	घेघेतेटे	घेघेनग	दिनतक	धाऽऽऽ
घेघेनग	दिनतक	धाऽऽऽ	घेघेनग	दिनतक	धाऽऽऽ	तेटेतेटे	घेघेतेटे
घेघेनग	दिनतक	धाऽऽऽ	घेघेनग	दिनतक	धाऽऽऽ	घेघेनग	दिनतक

धा

प्रस्तुत कायदा तीनताल में निबद्ध है। यह मिश्र जाति का कायदा है। यह कायदा उस्ताद आफाक हुसैन खाँ साहब का प्रिय कायदा था। उस्ताद आफाक़ हुसैन खाँ साहब अपने स्वतन्त्र वादन में इसे प्रस्तुत करते थे। मिश्र जाति में निबद्ध होते हुए भी 2–2 मात्रा का गणितीय प्रयोग धाऽ तक धिंऽ नाना तेटे बोल में किया गया है। 'धिं' बोल में 'न' वर्ण के वादन में अनामिका अंगुली का प्रयोग किया है।

Social Research Foundation

Musical Instrument & Indian Film Industry
ISBN: 978-81-947902-6-6

कायदा नं०–4

धाऽतकधिं ऽनानातेटे धागेतकधिं ऽनानातेटे	धाऽतकधिं ऽनानातेटे धागेतकतिं ऽनानातेटे
ताऽतकधिं ऽनानातेटे ताकेतकतिं ऽनानातेटे	धाऽतकधिं ऽनानातेटे धागेतकधिं ऽनानातेटे

पल्टा नं०–1

धाऽतकधिं ऽनानातेटे धागेतकधिं ऽनानातेटे	धाऽतकधिं ऽनानातेटे धागेतकधिं ऽनानातेटे
धाऽतकधिं ऽनानातेटे धागेतकधिं ऽनानातेटे	धाऽतकधिं ऽनानातेटे धागेतकतिं ऽनानातेटे
ताऽतकतिं ऽनानातेटे तागेतकतिं ऽनानातेटे	ताऽतकतिं ऽनानातेटे तागेतकतिं ऽनानातेटे
धाऽतकधिं ऽनानातेटे धागेतकधिं ऽनानातेटे	धाऽतकधिं ऽनानातेटे धागेतकधिं ऽनानातेटे

पल्टा नं0 – 2

धाऽतकधिं ऽनानातेटे धाऽतकधिं ऽनानातेटे	धाऽतकधिं ऽनानातेटे धागेतकधिं ऽनानातेटे
धाऽतकधिं ऽनानातेटे धागेतकधिं ऽनानातेटे	धाऽतकधिं ऽनानातेटे धागेतकतिं ऽनानातेटे
ताऽतकतिं ऽनानातेटे ताऽतकतिं ऽनानातेटे	ताऽतकतिं ऽनानातेटे ताकेतकतिं ऽनानातेटे
धाऽतकधिं ऽनानातेटे धागेतकधिं ऽनानातेटे	धाऽतकधिं ऽनानातेटे धागेतकधिं ऽनानातेटे

Social Research Foundation

पल्टा नं0 – 3

धाऽतकधिं ऽनानातेटे धागेतकधिं ऽनानातेटे	धागेतकधिं ऽनानातेटे धागेतकधि ऽनानातेटे
धाऽतकधिं ऽनानातेटे धागेतकधिं ऽनानातेटे	धाऽतकधिं ऽनानातेटे धागेतकतिं ऽनानातेटे
ताऽतकतिं ऽनानातेटे तागेतकतिं ऽनानातेटे	तागेतकतिं ऽनानातेटे तागेतकतिं ऽनानातेटे
धाऽतकधिं ऽनानातेटे धागेतकधिं ऽनानातेटे	धाऽतकधिं ऽनानातेटे धागेतकधिं ऽनानातेटे

पल्टा नं0 – 4

धाऽतकधिं ऽनानातेटे धागेतकधिं ऽनानातेटे	धिंनानातेटे धिंनानातेटे धागेतकधिं ऽनानातेटे
धाऽतकधिं ऽनानातेटे धागेतकधिं ऽनानातेटे	धाऽतकधिं ऽनानातेटे धागेतकतिं ऽनानातेटे
ताऽतकतिं ऽनानातेटे तागेतकतिं ऽनानातेटे	तिंनानातेटे तिंनानातेटे तागेतकतिं ऽनानातेटे
धाऽतकधिं ऽनानातेटे धागेतकधिं ऽनानातेटे	धाऽतकधिं ऽनानातेटे धागेतकधिं ऽनानातेटे

तिहाई

धाऽतकधिं ऽनानातेटे धागेतकधिं ऽनानातेटे	धाऽऽऽऽ धागेतकधिं ऽनानातेटे धाऽऽऽऽ
धागेतकधिं ऽनानातेटे धाऽऽऽऽ धाऽतकधिं	ऽनानातेटे धागेतकधिं ऽनानातेटे धाऽऽऽऽ
धागेतकधिं ऽनानातेटे धाऽऽऽऽ धागेतकधिं	ऽनानातेटे धाऽऽऽऽ धाऽतकधिं ऽनानातेटे
धागेतकधिं ऽनानातेटे धाऽऽऽऽ धागेतकधिं	ऽनानातेटे धाऽऽऽऽ धागेतकधिं ऽनानातेटे धा

Social Research Foundation

प्रस्तुत कायदा कायदा तीनताल में निबद्ध है। यह मिश्र जाति का कायदा है। यह कायदा उस्ताद आफाक हुसैन खाँ साहब अपने स्वतन्त्र वादन में इसे प्रस्तुत करते थे। इसमें मध्यमा व तर्जनी अंगुली का प्रयोग अधिकता से किया गया है। इस कायदे में चाँटी व स्याही का प्रयोग सौन्दर्य वृद्धि करता है।

कायदा नं०–5

धातेटेघे टेधातेटे धातीधागे धिंनागीना | धातेटेघे टेधातेटे धातीधागे तिंनाकीना
तातेटेते टेतातेटे तातीताके तिंनाकीना | धातेटेघे टेधातेटे धातीधागे धिंनागीना

उपरोक्त कायदों में लखनऊ घराने की सभी विशेषताएं बोलों का संयोजन, पाटाक्षर, वादन विशेषताएं इत्यादि स्पष्ट रुप से दृष्टिगोचर होती है। अतः कहा जा सकता है कि लखनऊ घराने के कायदे व उनकी बन्दिशें अद्‌भुत है। उनकी वादन की विशेषता अनेकों है। उनकी वादन शैली में लखनऊ घराने की विशेषताएं स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है।

वर्तमान में तबले का लखनऊ घराना उपेक्षित सा हो रहा है। आजकल लखनऊ घराने में कुछ गिने–चुने कलाकारों का ही नाम प्रमुखता से आता है। जैसे– उस्ताद इल्मास हुसैन खाँ, पं० सपन चौधरी इत्यादि। चूँकि लखनऊ का वादन एवं वहां की रचनाएं मुझे प्रारम्भ से ही अत्यधिक प्रिय थी तथा वहां का वादन मुझे अत्यधिक प्रभावित करता रहा है। अतः तबले की एक छोटी सी विद्याार्थी होने के कारण मैंने लखनऊ के कायदों को संगीत जगत के समक्ष रखने का एक छोटा सा प्रयास किया है। जिससे तबले के विद्यार्थी एवं संगीत रसिक–गण लाभान्वित हो सकें।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *ताल प्रबन्ध– पं० छोटे लाल मिश्र*
2. *तबला वादन कला और शास्त्र– श्री सुधीर माईणकर*
3. *तबला पुराण– पं० विजय शंकर मिश्र*
4. *ताल कोश– आचार्य गिराश चन्द्र श्रीवास्तव*
5. *तबला विशारद– डॉ० शिवेन्द्र प्रताप त्रिपाठी*

Sound Research Foundation

Musical Instrument & Indian Film Industry
ISBN : 978-81-947902-6-6

बनारसी तबला वादन में प्रतिबिम्बित साहित्य के बोल

शिवेन्द्र प्रताप त्रिपाठी
असिस्टेन्ट प्रोफेसर–तबला,
संगीत विभाग,
दयालबाग एजूकेशनल इंस्टीट्यूट,
दयालबाग, आगरा, भारत

Sound Research Foundation

विश्व के प्राचीनतम एवं सुविख्यात धार्मिक एवं सांस्कृतिक नगरों में वाराणसी या काशी या बनारस की गणना की जाती है। इस नगर का वर्णन वैदिक काल में भी पाया जाता है। शैव, वैष्णव, जैन, बौद्ध आदि भारत के प्रमुख धर्मों का यह केन्द्र रहा है। प्राचीन काल से ही संगीत, नाट्य आदि ललित कलाओं का भी यह प्रधान केन्द्र रहा है। वाराणसी विभिन्न धार्मिक मान्यताओं, रीति–रिवाज़ों एवं परम्पराओं का समन्वय स्थल है। यहाँ यक्ष, नाग, वृक्ष, नदी आदि की पूजा–अर्चना की जाती है। धार्मिक सहिष्णुता वाराणसी की एक प्रमुख विशेषता रही है।

शिक्षा के क्षेत्र में भी वाराणसी प्राचीन काल से ही विश्व प्रसिद्ध रहा है। यहाँ की गुरू–शिष्य–परम्परा तो पूरे संसार में प्रसिद्ध है तथा यह परम्परा आज भी उसी प्रकार अपना स्वरूप बनाये हुए है। वैदिक साहित्य, संस्कृत, प्राकृत, पाली आदि भाषाओं तथा हिन्दी साहित्य के प्रसार में यहाँ के विद्वानों का विशेष योगदान रहा है। वाराणसी प्राचीन काल से ज्योतिष विद्या और तंत्र विद्या का प्रधान केन्द्र रहा है तथा यह विद्या आज भी वाराणसी में यथावत विद्यमान है। प्राचीन काल से ही वाराणसी की महत्ता का मुख्य आधार यहाँ की व्यावसायिक समृद्धि भी रही है।

वाराणसी की धार्मिक व सांस्कृतिक महत्ता है। इस कारण इसकी गणना भारत की सात महापुरियों में की गई। आज भी योगियों, संन्यासियों, साधुओं, सिद्ध पुरूषों आदि से यह नगर परिपूर्ण मिलेगा। पुराणों में वाराणसी की धार्मिक समृद्धि की चर्चा है। वाराणसी में गंगा नदी पष्चिमवाहिनी हो जाती है, इसलिए इस नगर की धार्मिक महत्ता बढ़ जाती है।

वर्तमान में तबला वैश्विक वाद्य के रूप में प्रसिद्ध है। तबले के मुख्य रूप से 6 घराने माने गये है :– दिल्ली, अजराड़ा, लखनऊ, फर्रूखाबाद, बनारस और पंजाब। तबले पर बजने वाले बोल समूह निरर्थक होते हैं, इनका कोई शाब्दिक अर्थ नहीं होता है। परन्तु तबले के बनारस घराने में तबले के वर्णों के साथ ही साहित्य के बोलों को बजाने का भी चलन है। तबले पर बजने वाले साहित्य के बोलों को 'स्तुति परन' या 'बोल परन' कहा जाता है।

बनारस घराना के विकास के दौर में बनारस के अलावा अन्य पाँचों घराने मुस्लिम कलाकारों के थे जबकि केवल बनारस ही हिन्दूओं का घराना था। अतः स्तुति परनों का वादन बनारस घराने की एक उल्लेखनीय और महत्वपूर्ण विशेषता हुई। वर्तमान में तो हर घराने में हर जाति–धर्म के वादक हैं।

'स्तुति' एक संस्कृत भाषा का शब्द है। यह एक स्त्रीलिंग शब्द है। जिसका शाब्दिक अर्थ है – प्रशंसा, गुणगान, अपने आराध्य की वंदना आदि। 'परन' एक पुलिंग शब्द है। जिसका शाब्दिक अर्थ है – मृदंग, पखावज आदि वाद्य पर बजाये जाने वाले बोलों के टुकड़े, प्रण, पत्ता (पर्ण) आदि। परन मुख्यतः पखावज वाद्य पर बजने वाली बंदिष है।

प्रातःस्मरणीय गुरू पं. छोटेलाल मिश्र जी अपनी पुस्तक 'ताल प्रसून' में परन के मुख्य रूप से चार बतलाये हैं – 1. साथ–परन 2. गत–परन 3. ताल–परन 4. बोल–परन। बोल परनों को ही स्तुति परन

Social Research Foundation

भी कहा जाता है। इसमें देवी–देवताओं के नामों तथा उनकी लीलाओं छंदबद्ध तथा लयबद्ध वर्णन किया जाता है। बोल परनों का उपयोग मुख्यतः कथक नृत्य की संगति में होता है। इसके बोलों के अनुसार नृत्य का अभिनय किया जाता है।

बनारस घराने के प्रसिद्ध तबलाविद पं. विजयशंकर मिश्र जी के अनुसार – पखावज एवं कथक नृत्य से उत्प्रेरित होकर बनारस बाज के प्रतिनिधि हिन्दू कलाकारों ने स्तुति परणों के वादन की दिशा में तबले पर एक नया और महत्वपूर्ण प्रयास किया। इस कार्य में पं. नानक प्रसाद मिश्र का योगदान सर्वोच्च रहा। चूँकि बनारस तब हिन्दूओं का एकमात्र घराना था। अब तो हर घरानें में हर जाति, धर्म के वादक हैं – अतः स्तुति परणों का वादन बनारस बाज की एक उल्लेखनीय और महत्वपूर्ण विशेषता मानी गयी। इसमें विभिन्न देवी, देवताओं के चारित्रिक गुणों, विशेषताओं का वर्णन तबला पखावज के बोलों के साथ गुँथा हुआ होता है।

बनारस घराना प्रारम्भ से ही कथक नृत्य का एक प्रधान केन्द्र था। तबले के बनारस घराने के संस्थापक पं. रामसहाय जी की परम्परा में भी कथक नृत्य की कला थी और बनारस का तबला भी प्रारम्भ से ही पखावज से भी प्रभावित रहा है। चूँकि कथक और पखावज में स्तुति परन बजते हैं, अतः बनारस के तबले में भी स्तुति परनों का समावेश हुआ। नृत्यकारों एवं पखावज वादकों की ऐसी रचनाओं से प्रेरणा लेकर बनारस घराने के तबला वादकों ने स्तुति परनों के वादन की दिशा में तबले पर एक नवीन और महत्वपूर्ण प्रयास किया तथा स्तुति परनों की स्वतंत्र रचनाएँ की। परन्तु कथक नृत्य, पखावज और बनारस के तबले में बजने वाली स्तुति परनें एक–दूसरे से भिन्न होती हैं। इनकी प्रमुख भिन्नता बोलों के संयोजन की है। कथक नृत्य के स्तुति परनों में कथक नृत्य के बोलों की प्रधानता तथा पखावज वाद्य में बजने वाले स्तुति परनों में पखावज के बोलों की प्रधानता होती है। चूँकि बनारस का तबला पखावज से अधिक प्रभावित

Social Research Foundation

है, अतः यहाँ के स्तुति परनों में तबले के बोलों के साथ–साथ पखावज के बोल भी प्रमुखता से बजाये जाते हैं। नृत्य में प्रस्तुत किये जाने वाले स्तुति परनों में जहाँ लास्य भाव की प्रधानता होती है, वहीं तबले पर बजने वाली स्तुति परनों में जोरदारी और गम्भीरता का समावेश होता है। स्तुति परनें सदैव ही किसी न किसी छंद में ही निबद्ध होती हैं। स्तुति परनों में साहित्यिक शब्दों, देवी–देवताओं के नाम, उनके चारित्रिक गुणों तथा उनकी लीला सम्बन्धी वर्णन तबला–पखावज के बोलों के साथ सुंदर रूप से गुंथा हुआ होता है।

प्रस्तुत स्तुति परन में प्रयुक्त बोल समूहों में केवल तबले के ही बोलों का प्रयोग हआ है। इसमें पखावज वाद्य व कथक नृत्य के बोलों का प्रयोग नहीं किया गया है। यह बंदिश बनारस घराने के प्रख्यात तबला वादक तथा पद्मविभूषण पं. किषन महाराज के गुरू पं. कण्ठे महाराज जी की बंदिष है।

स्तुति परन – तीनताल

नाऽधन	नाऽधिऽ	ऽरदिऽ	ननकोऽ ।
तकधाऽ	ताऽऽऽ	निऽकेऽ	नाऽकटे ।
ऽकटत	दिनदेत	धिऽऽऽर	दिऽनन ।
कोऽधाऽ	ताऽऽऽ	धाऽताऽ	ऽऽधाऽ । धा

प्रस्तुत स्तुति परन को लंक दहन परन भी कहा जाता है। इसमें प्रयुक्त बोल समूहों में केवल पखावज के ही बोलों का प्रयोग हआ है। इसमें तबला व कथक नृत्य के बोलों का प्रयोग नहीं किया गया है। इसमें हनुमान जी द्वारा रावण की लंका को जलाने के समय का वर्णन दर्शाया गया है।

लंक दहन परन – चौताल

धिरकेटे धकिटब। ऽज्रकर शोऽभित। धगेनत गेनऽमा।
रूतसुत क्रोऽधित। धेत्धेत् दृगदग। ऽत्तान दित्।

धागेनता गेननट। धाकिटधा गेननट। लूमलं कंक।
फूंकप वनसुत। धिताऽध किटधुम। किटतक गदिगन।
धाऽ ताऽ। धिताऽध किटधुम। किटतक गदिगन।
धाऽ ताऽ। धिताऽध किटधुम। किटतक गदिगन। धा

प्रस्तुत स्तुति परन को कवित्त भी कहा जाता है। इसमें प्रयुक्त बोल समूहों में साहित्य के साथ नृत्य के बोलों का प्रयोग हआ है।

कवित्त – तीनताल

मुरली धुनसुन बजतमृ दंगधुन।
धुधुकिट धुधुकिट धुकिटधु किटथेई।
कुकुकुकु कुकुकुकु झननन नननन।
ध्वनिसु नतउठि हिरतफि रतचित।
चंऽद्रच पलगति नाऽदिगदिगनाऽ दिगदिगदिगदिग।
थोंऽदिगदिगथोंऽ दिगदिगदिगदिग त्रामयक थेईयक।
थेईयक थेईत्राम यकथेइ यकथेइ।
यकथेई त्रामयक थेईयक थेईयक। थेई

प्रस्तुत स्तुति परन को देव स्तुति परन भी कहा जाता है। इसमें हिन्दू धर्म के देवी–देवताओं के नामों का उल्लेख किया गया है। यह बंदिश बनारस घराने के तबला विद्वान पं. कण्ठे महाराज जी द्वारा रचित है।

देव स्तुति परन – तीनताल

ओईम्धा	निर्मलधा	नामधा	रामधा।
श्यामधा	नारायणधा	माधोधागोवि	ऽन्दधागिरधर।
भैरवधाशिव	धागणेशधा	काली–लक्ष्मी	सरस्वतीधा।
दुर्गाहनुमा ऽनब्रह्माधा इंद्रधाइं		द्रधाइंद्र। धा	

प्रस्तुत स्तुति परन को पावस परन भी कहा जाता है। पावस का अर्थ है – वर्षा ऋतु या बरसात। यह परन तीनताल में निबद्ध है। विद्वानों

Social Research Foundation

के मतानुसार यह मुख्य रूप से वर्षा ऋतु में बजाई जाती है। इसमें बरसात के समय बादल, बिजली आदि का वर्णन है।

पावस परन – तीनताल

तड़ित तड़तड़ घेतेटे घेघेतेटे।
धगिन क्ड़ाँऽतूना कतेटे धाऽघह।
राऽत बिऽजुघ टाऽन धननन।
धाऽत धननन धाऽत धननन। धा

प्रस्तुत स्तुति परन को गणेष परन भी कहा जाता है। इसमें भगवान गणेश जी की अर्चना की गई है। बनारस घराने के सभी प्रमुख कलाकार इस परन को अपने वादन में सम्मिलित करते थे। इसमें साहित्य के शब्दों के साथ ही तबले के बोलों का भी बहुत ही सुंदरता के साथ प्रयोग किया गया है।

गणेश परन – तीनताल

गणाऽना ऽमगण पतिगणे ऽषलम्ऽ ।
बोऽदर सोऽहेऽ भुजाऽचा ऽरएक।
दऽन्तचं ऽद्रमाऽ ललाऽट राऽजेऽ।
ब्रऽह्मा विष्णुम हेऽशता ऽलदेऽ।
ध्रुवपद गाऽवेंऽ अतिविचि ऽत्रगण।
नाऽथआ ऽजमिर दंऽगब जाऽवेंऽ।
धटधरा ऽनधिर धिरक्रधा ऽनदिन।
दिनदिन नागेनागे नागेधिन धिनतिन।
तिनताके नानातदि गनध्रिग ध्रिगदिन।
दिनदिना गेदिनागे ताऽक्रधा ऽनकिटतक।
धराऽन तराऽन धाऽकिटतक धराऽन।
तराऽन धाऽकिटतक धराऽन तराऽन। धा

Social Research Foundation

शिव स्तोत्र ताल परन – ताल धमार

जयकै लासी अविनाऽ शीऽसुखाँ राशी।
सदाऽर हेऽगंऽ । गाऽतट काषी खाऽतभं।
ऽगवृष भसंग शीऽशगं ऽगशिव।
शंकर धाऽषं करधाऽ शंकर धाऽ।
शंकर धाऽषं। करधाऽ शंकर धाऽ।
शंकर धाऽषं करधाऽ शंकर । क

प्रस्तुत स्तुति परन को लंक दहन परन भी कहा जाता है। यह झूलना छन्द तथा तीनताल में निबद्ध है। इसमें हनुमान जी के द्वारा राम–रावण युद्ध में किये गये अद्वितीय युद्ध कौशल का वर्णन किया गया है। इसमें साहित्य के बोलों के साथ–साथ पखावज के बोलों का भी प्रयोग किया गया है। प्रस्तुत बंदिश बनारस के प्रसिद्ध कलाकार स्व. पं. गामा महाराज जी द्वारा रचित है।

लंक दहन परन – तीनताल

धाऽग धाऽगेना धडांग धड़कत।
चलेलं ऽकहनु मंऽत गरजत।
राऽम चरऽण लगाये मऽस्तक।
लेऽग दाऽदोऽ भुजाऽ फरकत।
धिरकिटतक धिगधिग धरनी धऽस्कत।
निष्चर निकटहनु मंऽत तरपत।
इतल खनउतघन नाऽद योऽद्धाऽ।
बाऽण माऽरोऽ मघाऽ बरसत।
धाऽकिटतक तकधुमकिटतक धरत हनुमत।
क्ड़ान्धा तेटेकतगदिगन करम रोऽरत।
धेतेटे टाँऽगधरि धरिप छाऽरत।
नगिन नखसेऽ उदर फाऽरत।

Social Research Foundation

तड़त तड़तड़ तमक तड़पत।

देऽख कपिलंऽ केऽष डरपत।

इऽन्द्र शंऽकर विऽष्णु ब्रऽह्माऽ।

राऽम जसगाऽ वतफि रतकिटतक।

धाऽकिटतक तकधुमकिटतक नगिन नगतेटे।

धाऽधा किटतकदिंऽगड धाऽधा किटतकदिंऽगड़।

धाऽधा किटतकदिंऽगड़ धाऽऽ धाऽकिटतक।

तकधुमकिटतक नगिनन गतेटे धाऽधाऽकिटतक।

दिंऽगड़ धाऽधाऽकिटतक दिंऽगड़ धाऽधाऽकिटतक।

दिंऽगड़ धाऽऽऽ धाऽकिटतक तकधुमकिटतक।

नगिन नगतेटे धाऽधा किटतकदिंऽगड़।

धाऽधा किटतकदिंऽगड़ धाऽधा किटतकदिंऽगड़। धा

स्तुति परन – तीनताल (घनाक्षरी छन्द)

हाथिनसो	हाथीमारे	घोड़ेसेघो	ड़ेसंहारे ।
रथनसों	रथविद	रथबल	वाऽनकी ।
चंचलच	पेटचोट	चरनच	कोटाचारी ।
हहरानी	फौजेभह	रानीआतु	धाऽनकी ।
बारबार	सेवकस	राहनाक	रतराम ।
तुलसीस	राहेनित	साहबसु	जाऽनकी ।

लामीलुमी लसतल पेटपट कतभट ।

देखोदेखो लखनल ड़नहनु मानऽकी । धा

स्तुति परन को साहित्य के बोलों द्वारा समृद्ध होने के कारण बोल परन भी कहा जाता है। कथक नृत्य की परिभाषा में स्तुति परन या बोल परन को प्रमिलू या परिमलु भी कहते हैं। बनारस के वर्तमान तबला वादकों के स्वतंत्र वादन में स्तुति परनों का अभाव दिखलाई देता है। आज के तबला वादक इन प्राचीन रचनाओं को अपने वादन में सम्मिलित नहीं करते हैं। आज आवश्यकता है कि इन दुर्लभ बंदिशों को भी तबला वादन में शामिल किया जाये तथा इन बंदिशों का संरक्षण एवं संवर्धन हो सके।

Social Research Foundation

ISBN : 978-81-947902-6-6

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *ताल प्रबन्ध – पं. छोटेलाल मिश्र*
2. *ताल प्रसून – पं. छोटेलाल मिश्र*
3. *तबला विषारद – डॉ. शिवेन्द्र प्रताप त्रिपाठी*
4. *तबला पुराण – पं. विजय शंकर मिश्र*
5. *पखावज पारिजात – ठाकुर भीखम सिंह गौतम*
6. *कत्थक नृत्य शिक्षा–2 – डॉ. पुरू दाधिच*
7. *संगीत – मृदंग अंक, जनवरी–फरवरी 1965*

Social Research Foundation

Musical Instrument & Indian Film Industry
ISBN : 978-81-947902-6-6

चलचित्र में भावाभिव्यक्ति के माध्यम से सांगीतिक वाद्य यंत्रों का अंतरम सौन्दर्य

शिवाँगी श्रीमाली
सहायक आचार्य
संगीत विभाग,
जे.आर.एन.यू., एम.वी. श्रमजीवी कॉलेज,
उदयपुर, राजस्थान, भारत

Social Research Foundation

चलचित्र वह चाक्षुष माध्यम है, वह कर्णप्रत्यक्ष अनुभव है, जो दैनन्दिन क्रियाओं, घटनाओं को सजीव गति रूप देकर जीवन्त बना देता है और यह ऐतिहासिक बन जाता है। इसका सम्मोहन अथाह है। यह कला समाज से पूर्णतया तारतम्य रखती है। यह सर्वाधिक प्रभावित करने वाली कला है और संगीत इसका एक प्रमुख अंग है। गत पचहत्तर वर्षों की अपनी यात्रा में यह कला आसमान छूती हुई प्रतीत होती है और उसने समाज के प्रत्येक वर्ग को प्रभावित किया है। इस एक कला में विभिन्न कलाओं एवं माध्यमों का, विशेषतया संगीत का साहचर्य मिला। देश की आम जनता को सुरों से परिचित कराने एवं उन्हें गुनगुनाने की प्रेरणा उस्तादों अथवा पंडितों से नहीं मिली अपितु इसका श्रेय इस चलचित्र संगीत एवं संगीत निर्देशकों को ही जाता है और वर्षों पुरानी धुनें आज भी अमूल्य धरोहर है।

शब्द कुंजी : वाद्ययंत्र, चलचित्र, सौन्दर्य, सुर, कलाकार, शास्त्रीय आर्केस्ट्रा।

''वैज्ञानिक के घर जन्मी और कलाकार के यहाँ पली फिल्म कला के क्षेत्र में ऐसी उपलब्धि है, जिसमें विज्ञान की शक्ति है तो कला का सौन्दर्य भी, जो मस्तिष्क को खाद्य देती है तो हृदय को आन्दोलित भी करती है, जो फिल्मकार के लिए दुष्कर और जटिल है, तो दर्शक के लिए उतनी ही सुगम और सहज सुलभ भी है। फिल्म वैज्ञानिक और कलाकार के संयुक्त प्रयास का फल है। वैज्ञानिक ने यांत्रिक उपकरणों द्वारा अभिव्यक्ति के एक नवीन माध्यम को जन्म दिया और कलाकार ने इस माध्यम को अन्य कलाओं के संयोग से एक ऐसी नवीन कला का रूप दिया जो प्रभाव और प्रसार के सामर्थ्य में अपना प्रतिद्वन्द्वी नहीं रखती। फिल्म आज की सर्वाधिक लोकप्रिय कला है, जिसके नियमित दर्शक और प्रशंसक करोड़ों की संख्या में है। फिल्म कला में आधुनिक मनुष्य के अन्तरंग और बहिरंग स्वरूपों की जीवन्त प्रतिकृति प्रस्तुत करने की अद्‌भुत क्षमता हैं इसीलिए फिल्म आधुनिक मनुष्य के सबसे अधिक निकट है।'' सिनेमा आज समाज का मुख्य अंग बन गया है क्योंकि उसके द्वारा सम्पूर्ण लोक का मनोरंजन होता है। सिनेमा या नाट्य के दो मुख्य अंक हैं – 'कथा' और 'संगीत'। कथा नाट्य का शरीर है तो 'संगीत' उसकी आत्मा है। दोनों एक–दूसरे से शोभित होते हैं, सहयोग पाते हैं, इसलिए महर्षि भरत ने 'गीत' को 'नाट्य' की शैया बताया है। विश्व में संगीत की सार्वभौमिकता सहज स्वीकार्य है। मानव–जीवन में संगीत के स्थान का महत्त्व निर्विवाद है। भारतीय संगीत की संवादिता, उत्कृष्टता, सार्वभौमिकता आज विश्वभर में मान्य है, स्वीकार्य है। उसकी विभिन्न धाराओं में हम शास्त्रीय, उपशास्त्रीय, सुगम, लोकसंगीत आदि को गिना सकते हैं। विगत सात दशकों से

Social Research Foundation

भारतीय संगीत में एक नवीन धारा ''चलचित्र संगीत'' जुड़ गई है। अल्प समय में ही विभिन्न कारणों से जन–साधारण में इसकी लोकप्रियता सर्वोपरि हो गई है, यह सर्वविदित है।

शास्त्रीय रागाधारित गीतों में स्वरों का ऐसा समन्वय है कि विद्वान शास्त्रीय संगीतज्ञ उस अलौकिक आकार को नकार नहीं सकते। न व्याकरण की दृष्टि से अशुद्ध और न रस सौन्दर्य से परे। हाँ, शास्त्रीय उतनी ही है जो चिन्तानुरंजक हो। विभिन्न अनुभूतियों को स्थापित करने के लिए अनुकूल रागों का प्रयोग चलचित्र में हुआ है। वहाँ संगीत को शास्त्र से बाँधकर नहीं रखा गया है, वहाँ रंजकता प्रधान है। लोक रूचि को ही आधार मानते हुए लोक–शैली का भी अद्‌भुत प्रयोग किया गया है। चलचित्र का प्रचलन इन लोकोन्मुखी प्राणियों के उद्देश्य की पूर्ति में सहायक सिद्ध हुआ है।[1]

आधुनिककालीन भारतीय संगीत में चित्रपट संगीत बहुत ही लोकप्रिय हुआ है। चित्रपट एवं नाट्य में स्थूल रूप से बहुत साम्य है। दोनों में ही दर्शाये जाने वाले विभिन्न परिस्थितियों के वातावरण को उद्वेलित करने के लिए संगीत तथा उनके वाद्यों का सहारा लिया जाता है। भरतकालीन नाट्यों में भी इनका अवलम्बन लिया जाता था। शार्ङ्गदेवकालीन नाट्यों में इस हेतु वंशीवाद्य का विनियोग सर्वोपरि हो गया था। विभिन्न प्रसङ्गों पर वंशी के विनियोग के सम्बन्ध में शार्ङ्गदेव के निम्नांकित श्लोक उद्धरणीय हैं, मतङ्ग मुनि के मतों पर आधारित है–

ललितो मधुरः स्निग्धस्तेषु वंशः प्रशस्यते।
वंशवीणशरीराणमेकीभावेन यो ध्वनिः।।
तत्र रक्तिविशेषस्य प्रमाणं विबुधा विदुः।

Social Research Foundation

अध्यन्यानां प्रवासेषु कामिनीनिर्जितेषु च।।
शोकातेषु प्रयुन्जीत मृदुमध्यलयध्वनिम्।
वंश प्रयुन्जीत श्रृङ्गारे द्रुतादिललितध्वनिम्।।
कम्पितफुरितध्वानं वंशं द्रुतलयाश्रयम्।
क्रोधाभिमानयोः कुर्यान्मतङ्गेनेति कीर्तितम्।।

इस प्रकार शोक, श्रृंगार, क्रोध, अभिमान आदि प्रसंगों पर भावाभिव्यक्ति के लिए वंशी वाद्य के विभिन्न लयात्मक ध्वनियों के विनियोग के विषय में यहाँ सुन्दर और सारगर्भित चित्रण प्रस्तुत किया गया है, जिसका समुचित परिपालन आधुनिक चित्रपट संगीत में अक्षुण्ण रूप में हो रहा है।

चित्रपट संगीत में प्रयुक्त होने वाले सुषिर वाद्यों में वंशी, शहनाई, क्लारिनेट, नागस्वरम्, सैक्साफोन, हारमोनियम, आर्गन आदि प्रमुख हैं। इनके अतिरिक्त कई अन्य देशी एवं विदेशी सुषिर वाद्यों का भी प्रयोग आरम्भ हो गया है। इन सुषिर वाद्यों पर प्रमुख रूप से विविध रागों या धुनों के छोटी–छोटी स्वरावली का वादन किया जाता है, जो चित्रपट में अभिनित विभिन्न प्रसंगों के वातावरण को सजीवता प्रदान करने के लिए अत्यन्त सहायक होता है।[2]

भारतीय संगीत मुख्यतः गायन पर आधारित है। गायन की प्रधानता होने पर हमें वैदिककाल से वाद्यों का समुचित प्रयोग मिलता है। भारतीय संगीत का आधार मूलतः गायन है, इसलिए उन्हीं वाद्यों का अधिक प्रयोग किया जाता है जिनकी ध्वनि मानव कण्ठ से अधिक मिलती है। हमारे संगीतकारों का मत है कि वाद्यों का अपना रूप स्वयं बोलना चाहिए। जो वाद्य मानव की पूर्ण अभिव्यक्ति में असमर्थ

Social Research Foundation

रहते हैं उन्हें संगीतकारों ने अधिक महत्त्व नहीं दिया है, तथा उन्हें 'शुष्क' वाद्य कहा है।

संसार में भारत ही एक ऐसा प्रथम देश है जहाँ सहस्रों वर्ष पूर्व संगीत वाद्यों का विधिवत् वर्गीकरण प्रस्तुत किया है। पूर्ववर्ती वैदिककालीन एवं उनके परवर्ती साहित्य के अवलोकन से यह स्पष्ट सा हो जाता है कि यहाँ चारों वर्ग के वाद्य विपुल संख्या में उपलब्ध थे, जिनका प्रयोग सामाजिक तथा विभिन्न अवसरों पर किया जाता था। पूर्ववर्ती वैदिककाल के किसी भी ग्रन्थ में इन वाद्यों का वर्गीकरण उपलब्ध नहीं है। वैदिककाल में वाद्यों का वर्गीकरण नहीं मिलता है, किन्तु इन चारों प्रकार के वाद्यों का उल्लेख मिल जाता है। वीणा के विषय में 'ऐतरेय आरण्यक' महत्त्वपूर्ण तथ्य प्रदान करता है। जहाँ मानुषी वीणा की तुलना दैवी वीणा से की गई है।

रामायण तथा महाभारत में 'वदित्र' के अन्तर्गत ही तत, अवनद्ध, घन तथा सुषिर वाद्यों का अन्तर्भाव था। अलग से विभाजन नहीं मिलता है। रामायण तथा महाभारत में विभिन्न प्रसंगों पर संगीत विषयक सामग्री एवं तत, अवनद्ध, घन, सुषिर वाद्यों के विभिन्न रूपों का वर्णन मिलता है।

पाणिनि की 'अष्टाध्यायी' में वृन्दावन के लिए 'तूर्य' शब्द का प्रयोग पाया जाता है। जिसमें सभी वाद्यों का अन्तर्भाव है। बौद्ध साहित्य में तत, वितत, घन तथा सुषिर इन चतुर्विध वाद्यों का प्रचुर उल्लेख पाया जाता है।

'हरिवंश पुराण' में तत, घन, सुषिर आदि वाद्य–वर्ग का उल्लेख मिलता है– जिससे ज्ञात होता है कि वाद्यों को विभिन्न वर्गों में वर्गीकृत किया जाता था–

Social Research Foundation

ततो घनं ससुषिरं मुरजानकभूषितम्।
तन्त्री स्वरगणैर्विद्धानतौद्यानन्ववादयम्!।।

'विष्णुधर्मोत्तर पुराण' के उन्नीसवें अध्याय में तत, सुषिर, घन और अवनद्ध इन चार प्रकार के वाद्य वर्गों का उल्लेख मिलता है– चतुर्विधमातोद्यं। ततं सुषिरंघनमवद्धं च।

वाद्यों के बारे में लिखे गए प्रथम ग्रन्थ के वार्त्ता नारद और स्वाति हैं। यह तथ्य भरत मुनि के द्वारा ही 'नाट्यशास्त्र' में स्पष्टतया बताया जाता है। वाद्याध्याय के प्रारम्भ में (अध्याय 33 नाट्यशास्त्र) भरतमुनि कहते हैं–

मृदंग पणवानाञ्च दर्दुरस्य तथैव च
गान्धर्वञ्वैव वाद्यञ्च स्वातिना नारदेन च।
विस्तार गुण सम्पन्नमुक्तं लक्षणकर्मतः।
अनुवृत्या तदा स्वातिरातोद्यानां समासतः।
पौष्कराणां प्रवक्ष्यामि निर्वृत्तिं सम्भवं तथा।
गान्धर्वमेतत् कथितं मया हि पूर्वं यदुक्तं त्विह नारदेन।
कर्याद्य एवं मनुजः प्रयोगं सम्मान योग्यः कुशलेषु गच्छेत।

इसका तात्पर्य यह है कि स्वाति एवं नारद ने मृदंग, वणव, दर्दुर आदि अवनद्ध वाद्यों, तन्त्री वाद्यों और अन्य वाद्यों के भी विस्तारपूर्वक सुस्पष्ट लक्षण और वादन क्रम बताए हैं। उन्हीं का अनुसरण करके भरत ने पुष्कर आदि वाद्यों की उत्पत्ति, बनाने का क्रम और वादन क्रम बताया है।

'संगीत मकरंद' में पंचविध नाद बताया गया है। अनाहत और आहत दो प्रकार का नाद होता है। आहत को पाँच प्रकार के

Social Research Foundation

नाद वाला कहा गया है– नख और वायु, चमड़े, लोह तथा शरीर द्वारा उत्पन्न होने वाला नाद।

अनाहतः आहतश्चेति द्विविधो नादस्तत्र।
सोऽप्याहतः पंचविधो नादस्तु परिकीर्तितः।।

नखवायुज चर्माणि (चर्मण्य) लोह शारीरजास्तथा।। संगीत मकरन्द

1. वीणा आदि नखज, 2. वंश आदि 'वायुज', 3. मृदंग आदि चर्मज, 4. ताल आदि 'लोहज', 5. तथा 'शरीरज' पाँच नाद होते हैं। इस पंचविध नाद में वीणा को नाखून द्वारा बजाने की ओर संकेत मिलता है। 'लोह' शब्द से कांस्य, ताँबे आदि धातु को भी समझना चाहिए।[3]

ऑर्केस्ट्रा

विश्व में होने वाली घटनाएँ कला को प्रभावित करती हैं। भारतीय विभिन्न प्रदेशों के वासी अपनी आंचलिक धरोहरों के साथ विभिन्न प्रदेशों की सांगीतिक विशिष्टताओं को अपनाते हैं। संगीत विद्या का विकास इसके पारम्परिक बदलाव के कारण भी हुआ। गीतों में संगीत की गति तेज होने लगी। वाद्य यंत्रों का प्रयोग बेहतर एवं अधिकाधिक होने लगा। योजनाबद्ध तरीके से किया गया यह कार्य गति लेने लगा। वाद्य यन्त्रों की अधिकता एवं संगीत के बढ़ते महत्व के कारण शब्दों का कम महत्व होने लगा। भारतीय के साथ–साथ पश्चिमी वाद्य यंत्रों का भी प्रयोग बढ़ने लगा। पश्चिमी वाद्य यंत्रों को संगीत में स्थान देने के लिए निरन्तर प्रयोग किया जाने लगा और उसने 'ऑर्केस्ट्रा' का रूप ले लिया। आर्केस्ट्रा में एक संयोजक की आवश्यकता होती है। इसमें अरेंजर (व्यवस्थापक) से भी मदद मिलती है। ''आर्केस्ट्रा ग्रीक भाषा का शब्द है तथा इसका अर्थ है स्टेज और

Social Research Foundation

दर्शकों के बीच रिक्त रखा जाने वाला निश्चित स्थान। इस अर्धवृत्ताकार स्थान में कोरस या नृत्य मण्डली अपनी कला का प्रदर्शन नाटक के बीच करती थी तथा नाटक में होने वाली घटनाओं पर टिप्पणी की जाती थी। 17वीं एवं 18वीं सदी में जब यूरोपीय ओपेरा हाउस लोकप्रिय हुए तब इस रिक्त स्थान में संगीतकार एवं वादक बैठने लगे। धीरे–धीरे यहाँ बैठने वाले संगीतकारों के दल को 'ऑर्केस्ट्रा' कहा जाने लगा। यह नाम इतना अधिक प्रचलित हुआ कि संगीतकारों एवं वादकों का बड़ा दल आर्केस्ट्रा कहलाने लगा। यद्यपि बैंड में भी संगीतकार और वादक होते हैं, किन्तु वह 'आर्केस्ट्रा' नहीं कहलाता। तंतु वाद्य (वायलिन परिवार) के बिना कोई भी दल 'ऑर्केस्ट्रा' नहीं कहलाएगा, वह बैंड ही कहलाएगा।

अनेकानेक रोजगारपरक अवसरों को प्रश्रय देने वाला संगीत ऑर्केस्ट्रा के क्षेत्र में अनेक स्थायी पदों की ओर आकृष्ट करता है। ''बड़े ऑकेस्ट्रा के इस्तेमाल के चलन ने संगीत संयोजक की आवश्यकता को भी महसूस करवाया। जब किसी गीत की रिकॉर्डिंग के दौरान स्टूडियों में बीस साज एक साथ बज रहे हों तो उनकी लय–ताल में समरूपता को नियंत्रित करने के लिए एक संयोजक का होना जरूरी हो गया। इसके साथ ही पूरी धुन का लिखा जाना और लिखित अनुदेशों के मुताबिक वाद्ययंत्रों को बजाना भी जरूरी हुआ। अतः प्रत्येक ऑर्केस्ट्रा वादक के लिए संगीत के लिखित रूप को पढ़ना–लिखना एवं समझना अनिवार्य बन गया। हमारी भारतीय पृष्ठभूमि में लिखित संगीत की कोई परम्परा नहीं थी। सच तो यह है कि सदियों से हमारे यहाँ संगीत की योजनाबद्ध एवं सुचारूशिक्षा की व्यवस्था का अभाव था। भारतीय संगीत पर पश्चिमी संगीत के प्रभाव

Social Research Foundation

ने इस कमी को उजागर किया तथा शिक्षित संगीतकारों की माँग उद्योग में बढ़ने लगी।[4]

'ऑर्केस्ट्रा' का सफलतम् एवं सर्वाधिक प्रयोग फिल्मों में हुआ। आरम्भ में पूरी ऑर्केस्ट्रा को रखने के लिए बहुत कम प्रेक्षा गृह थे। ''निर्वाक युग का सबसे प्रख्यात पार्श्व संगीत आईजेश्ताइन की पोटेमकिन फिल्म के लिए रचित जर्मन स्वरकार माईजेल की स्वरलिपि था। इसकी प्रथम प्रदर्शनी ने ही हलचल मचाई थी जो अभूतपूर्व था। इस संगीत का बहुत प्रचार नहीं हो सका क्योंकि यह 'ऑर्केस्ट्रा' रचना थी और इसके लिए प्रेक्षा गृह का अभाव था। ''सवाक् युग मे ऑर्केस्ट्रा का व्यवहार चलचित्र निर्माताओं ने ले लिया। हॉलीवुड के सभी स्टूडियों में ऑर्केस्ट्रा की नियुक्ति की गई। और अब ऑर्केस्ट्रा पूरी तरह फिल्म उद्योग की मांग बन गई है जो संगीत के ज्ञाताओं को आकृष्ट कर उत्तम जीवनयापन की प्रेरणा देता है।

इस प्रकार, पूर्वी संगीत एवं पाश्चात्य संगीत के विज्ञ कलाकारों के संयोग से बनी यह विद्या आज विकसित रूप से दृष्टिगोचर होता है। इस विद्या में भारतीय संगीत शैली पर यूरोपीय शैली का व्यापक प्रभाव है। वाद्य यंत्रों को देश की भौगालिक सीमाओं में बाँधकर नहीं रखा जा सकता। भारत में यूरोपीय वाद्य यंत्रों का आगमन 17वीं सदी में ही आरम्भ हो गया था। ईसाई इसी सदी में हारमोनियम लाए और तीन शताब्दियों में हारमोनियम भारतीय वाद्य के रूप में प्रतिष्ठित हो गया और अब यूरोप में हारमोनियम भारतीय वाद्य के रूप में प्रतिष्ठित हो गया और अब यूरोप में हारमोनियम का

Social Research Foundation

निर्माण बन्द हो चुका है। वायलिन को भी हमने एक सदी पूर्व ही अपना लिया है।

आरम्भिक दौर में फिल्म संगीत में निर्देशक मिठास एवं नवीनता के लिए नए–नए वाद्य यंत्रों का प्रयोग करना चाहते थे। इस पूर्ति के लिए फौजी बैण्ड, होटल बैण्ड तथा विदेशी बैण्ड के कलाकार ऑर्केस्ट्रा में शामिल हुए। मैन्डोलिस, कलारनेट, हवाईयन गिटार, पियानो, अकार्डियन, ड्रम, ट्रम्पेट आदि ने इस कला में महत्वपूर्ण योगदान दिया। आज तो भारतीय वाद्य भी इस ओर उल्लेखनीय रूपों में हैं। अतः इस क्षेत्र में निपुण वादकों का भी स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। ऑर्केस्ट्रा में ऐसे कई अवसर हैं जहाँ संगीत के तकनीक एवं ज्ञान के द्वारा धनोपार्जन एवं कला के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्यों द्वारा विश्व पटल पर ख्याति भी अर्जित की जा सकती है।[5]

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *लक्ष्मीकान्त कीर्ति सिंह 'काव्या', हिंदी चलचित्र जगत के सफलतम संगीत निर्देशक, कनिष्क पब्लिकेशन, नई दिल्ली, भाग–1*
2. *डॉ. राधेश्याम जायसवाल : भारतीय संगीत के सुषिर–वाद्यों का इतिहास, कनिष्क पब्लिशर्स, नई दिल्ली, पृ. 77–78*
3. *चन्दावरकर, भास्कर, सरगम के सफर के बहुआयामी सोपानल, सरगम का सफर, नई दुनिया, जून, 1989, पृ.133*
4. *दीक्षित, प्रदीप कुमार, भारतीय संगीत की पृष्ठभूमि में चलचित्र संगीत का विवेचनात्मक अध्ययन (शोध–प्रबन्ध), पृ. 20*
5. *संगीत सुधा, डॉ. लावण्य कीर्ति सिंह 'काव्या' कनिष्क पब्लिकेशन, पृ. 151*

Social Research Foundation

Musical Instrument & Indian Film Industry
ISBN : 978-81-947902-6-6

फिल्मी संगीत में संगीत निर्देशन एवं वाद्य यंत्रों का अद्वितीयक अंतर सम्बंध

हितेष गंधर्व
सहायक आचार्य,
संगीत विभाग
जे.आर.एन.यू., एम.वी. श्रमजीवी कॉलेज,
उदयपुर, राजस्थान, भारत

Social Research Foundation

किसी भी फिल्म की सफलता व उसके संगीत को लोकप्रिय बनाने में 'संगीत–निर्देशक' का विशेष योगदान रहता है। नाट्य, कोरस, आर्केस्ट्रा तथा फिल्म से सम्बन्धित सभी प्रकार के संगीत की संरचना और उसे नियंत्रित करने में 'संगीत–निर्देशक' की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। जब से मंचीय कलाओं का जन्म हुआ, तभी से संगीत–निर्देशन की कलाओं का विकास हुआ। भरतमुनि के 'नाट्यशास्त्र' में गायक, वादक, नर्तक और नाट्य–सम्बन्धी रचनाओं को बनाने वाला 'संगीत–रचयिता' कहलाता था। जिन्हें आज वाग्गेयकार भी कहा जाता है। रचयिता की रचना को कलाकार द्वारा शुद्ध रूप में प्रस्तुत करने वाला व्यक्ति 'संगीत–निर्देशक' कहलाता है, जिन्हें अंग्रेजी भाषा में क्रमशः 'कम्पोजर' और 'म्यूजिक–डाइरेक्टर' कहते हैं। किसी भी सांगीतिक विधा को या चना को तैयार करने में निर्देशक की अहम् भूमिका रहती है। इसके लिए उसे बुद्धिमान व प्रतिभाशाली होना चाहिए। साहित्य से लेकर लोक–धुनों और लोक हृहृदय की उसे गहरी पहचान होना आवश्यक है।

शब्द कुंजी : संगीत निर्देशन, गीत, धुनें, रोशन जी, लक्ष्मीकांत प्यारेलाल आर्केस्ट्रा।

फिल्म एक लोक–तंत्रीय कला है, यह किसी लेखक, मूर्तिकार, चित्रकार, फोटोग्राफर, संगीतकार, गीतकार, गायक तथा कलाकार की व्यक्तिगत अभिव्यक्ति नहीं है, इन सभी की कलाओं का सामूहिक योगदान है।

फिल्मों में प्रयुक्त होने वाले गीत और उनके संगीत की निर्माण–प्रक्रिया में भी गीतकार, संगीतकार, अरेंजर, गायक–गायिका, विभिन्न वाद्यवादक, रिकॉर्डिस्ट का सामूहिक योगदान रहता है। फिल्म में, उसके वातावरण के अनुकूल प्रयोग को, निर्देशक ही महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। निर्देशक पर निर्भर करता है कि फिल्म में कब, कहाँ, कैसे, गीत प्रयुक्त करना है।

फिल्म–'संगीत–निर्देशक, स्वतंत्र नहीं होता, वह एक व्यावसायिक फिल्म हेतु संगीत निर्माण करता है। फिल्म के कथानक, निर्देशक का दृष्टिकोण, निर्माता की इच्छा, गायक–गायिका की क्षमता आदि ऐसे तथ्य हैं, जो कि बहुत शक्तिशाली हैं। फिल्म संगीत निर्देशक को इससे जुड़कर ही चलना होता है।

जब भारतीय फिल्मों में संगीत भी प्रस्तुत किया जाने लगा तो फिल्मों की लोकप्रियता और अधिक बढ़ गई। फिल्मों में संगीत देने का श्रेय संगीत निर्देशक या फिल्म संगीतकार को जाता है। गीतकार द्वारा लिखी गई गीत या रचना को संगीत निर्देशक अपने निर्देशित संगीत में ढालकर किसी गायक–गायिका से गवाता है।[1]

निश्चय ही, लगभग 500 फिल्में में संगीत निर्देशन कर सफलता प्राप्त करने का यही मूलमंत्र है। और पुनः निश्चय ही, एल.

Social Research Foundation

पी. के आगमन से पूर्व कई दिग्गज संगीतकारों की श्रृंखला रही जिसमें आने वाले समय में लक्ष्मीकान्त–प्यारेलाल ने फिल्मों एवं गीतों की संख्या एवं गुणवत्ता के आधार पर जो इतिहास रचाा वह अभी तक अस्पृश्य है, अछूता है। इस ऐतिहासिक कार्य और संरचना के पीछे उनकी कठिन तपस्या, लगन, परिश्रम, सूझ–बूझ एवं संगीत है।[2]

वाद्य वृन्द का प्रयोग

रोशन की खास बात यह थी कि वह अपनी रिकॉर्डिंग में बड़े इत्मीनान और ध्यान के साथ बैठा करते थे। पहली लाईन में क्या संगीत होगा, दूसरी लाईन में और स्थायी के बाद क्या संगीत होगा, और अन्तरे से पहले क्या संगीत होगा। इस तरह का सारा काम वो खुद किया करते थे। अपने अरेंजर (मास्टर सोनिक) को लिखवाकर साजिन्दों के साथ रिहर्सल कराया करते थे। इसीलिए उनके गीताकें में रिद्म की विविधता रहीत थी, तथा मेलाडी का प्रवाह रहता था। जो काम अरेंजर किया करते हैं वो सारा काम रोशन खुद बैठकर किया करते थे। उनके गीतों की धुनें स्वयं में इतनी मधुरता व पूर्णता लिये होती थी कि उन्हें वाद्यवृन्द के सहारे की अधिक आवश्यकता नहीं होती थी। वह वाद्ययंत्रों क मात्र में नहीं गुणवत्ता में विश्वास करते थे। कम वाद्यवृन्द में भी वह गीत में मनचाहा प्रभाव ले आते थे। उनकी बनायी हुई रचनायें, जिनमें वाद्यवृन्द की मात्रा अधिक है, इस प्रकार हैं– ''काहे तरसाये जियरा'' (चित्रलेखा), ''गरजत बरसत सावन आयो रे'' (बरसात की रात), ''लागा चुनरी में दाग'' (दिल ही तो है), उनकी बनायी सभी कव्वालियाँ तो लोकप्रिय हैं ही, साथ ही जिन रचनाओं में वाद्यवृन्द की मात्रा कम है– ''मन रे तू काहे न धीर धरे'' (चित्रलेखा), ''मैनें शायद तुम्हें पहले भी कहीं देखा है'' (बरसात

Social Research Foundation

की रात), ''तेरी दुनिया में दिल लगता नहीं वापस बुला ले'' (बावरे नैन), ''मिले न फूल तो काँटों से दोस्ती कर ली'' (अनोखी रात) आदि आज भी बहुत लोकप्रिय है।

यदि हम रोशन की संगीत रचनाओं का विश्लेषण करें तो हमें उनमें र रूप व हर रंग दिखलाई देगा। हास्य गीत, युगल गीत, विरह गीत, प्रेम गीत, संदेश गीत, बाल गीत इत्यादि सभी प्रकार की रचनाओं तथा कव्वाली, भजन, गजल, लोकसंगीत सभ्झी विधाओं में उन्होनें शुद्ध भारतीय परम्परा को सर्वोच्च मानकर संगीत तैयार किया। अपने समय के वे एकमात्र ऐसे संगीतकार थे जिनका संगीत किसी विशेष विधा और शैली का गुलाम नहीं था। उन्होनें अपने संगीत को किसी विशेष प्रकार की मान्यता या बंधन में कैद नहीं किया। साथ ही, उन्हें भारतीय शास्त्रीय संगीत से विशेष प्रेम था इसलिए उन्होनें अपनी रचनाओं में विशुद्ध भारतीय संगीत दिया और उसमें यथासम्भव पाश्चात्य शैली का कहीं प्रयोग नहीं होने दिया। उनकी रचनाओं में मेलाड़ी हमेशा प्रधान रही। यही कारण है कि इनकी बनायी विशुद्ध शास्त्रीय रागों पर आधारित धुनें भी गाने बजाने में कठिन प्रतीत नहीं होती और गले में आसानी से उतारी जा सकती है।[3]

कई दिग्गज संगीतकारों के बीच ओ.पी. नैय्यर ने स्वयं को दृढ़ स्थापित किया। ''सवाल यह है कि उनके ऐसा क्या थी जिसकी वजह से शंकर जयकिशन, नौशाद, सचिन दा, मदन मोहन, रोशन जैसे सिद्धहस्त संगीतकारों के होते हुए भी ओ.पी. नैय्यर ने अपने नाम का लोहा मनवाया। उनके संगीत का विश्लेषण करें तो हम पाते हैं कि मधुरता ही उनके संगीत का प्रमुख आकर्षण था। सितार, संतूर,

Social Research Foundation

क्लेरनेट, सारंगी, तथा सबसे बढ़कर घुँघरूओं की मिठास उनके गीतों में रची–बसी थी। सबसे ऊपर थी रिद्म। ताल वाद्य और रिद्म। तबले एवं ढोलक का जितना खूबसूरत और सही इस्तेमाल नैय्यर ने किया, उतना किसी ने नहीं। इन गीतों को सुनिए, आप स्वयं मेरे कथन से सहमत हो जायेंगे– 'तू लागे मोरा बालमा' (श्री 420), रेशमी सलवार कुर्ता जाली का (नया दौर), यूँ ही बातें न बना तू (कैदी), ले के पहला पहला प्यार (सी.आई.डी), जादूगर साँवरिया (ढाके की मलमल), पिया पिया ना लागे मोरा जिया (फागुन), ये देश है वीर जवानों का (नया दौर)। एक लंबा सिलसिला ऐसे गीतों का।
उनके रिद्म का जवाब नहीं। गज़ब का चलन।

"And of course his sense of rhythm was unbelievable. His percussion in the Asha rendered 'Chhota sa baalama' (Raagini) is an excellent bandish in Teentaal. Nayyar wore his magic in Asha and Kishore's" mud mud humko dekhta", where you see an example of the panjabi keherwa on the dholak. One's fingers start beating an imaginary tabla, one's body moves up and down, and one's voice sings along with such songs. FOr the same film check out the Teentaal in ustad Amir Khan's Jogiye' mere ghar Aaye (in raag Latit), and niaj Khan and Fayaaz Khana's 'Cheed Diye Mere dil ke Taar Kyoon' (Raag Kamod)**.**[4]

अपने सांगीतिक जीवन के आरंभ (छठे दशक) में लक्ष्मीकान्त ने कई मशहूर संगीतकारों की रचनाओं के लिए मैण्डोलिन–बजाया। सचिन देव बर्मन ने अपनी रचनाओं में मैण्डोलिन का भरपूर प्रयोग किया है। सचिन देव वर्मन के गीतों की विविधता और गहराई, दोनों ही स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। 1958 में बनी नरगिस और बलराज साहनी अभिनीत फिल्म 'लाजवंती' में लक्ष्मीकान्त के मैण्डोलिन वादन

Social Research Foundation

का खूबसूरत स्वरूप मिलता है– ''कोई आया धड़कन कहती है।'' 'गा मेरे मन गा' का लहराता तरन्नुम यदि बोंगों के बीट्स, गिटार के Chords और इसके साथ लोक संगीत की भी छाया लेकर आशा की Humming और आलापों के द्वारा अत्याकर्षक बन पड़ा है तो 'कोई आया धड़कन कहती है' का तो जवाब ही नहीं है। मैंडोलिन की चटकदार संगत के साथ इस गीत की आह्लादभरी लय और अद्वितीय गायकी तो जादू ही कर देती है। यह भी रोचक तथ्य है कि इस मैंडोलिन को लक्ष्मीकान्त ने बजाया था। लक्ष्मीकान्त बहुत नर्वस थे और आशा ने ही उनका हौसला बढ़ाकर उन्हें अपने पास खड़ा करके बजवाया था। परिणाम तो चमत्कृत करने वाला ही रहा। आशा के गाए सर्वश्रेष्ठ गीतों में मैं इसे मानता हूँ।[5]

Laxmikant and Pyarelal besides having been musicians, have on occasion assisted and arranged music for many composers such as for S.D. Burman in Ziddi.

चलचित्र संगीत संकुचित विचारों से परे है। चलचित्र संगीत अपनी सरलता, सहजता के कारण सामान्य जन तक आसानी से पहुँचता है और प्रफुल्लित करने का सर्वोत्तम उपादान साबित होता है। अन्तर्मन को छूने में सक्षम शब्दों में मधुर संगीत भर जाने से इसकी व्यापकता बढ़ जाती है। यह संगीत हृदयहीन को भी सरलता से सुहृदय बना देता है। इसमें यह आलौकिक प्रतिभा है। जटिलता के अभाव में यह पतित और सभ्य दोनों सामाजिक परिवेश को आह्लादित करता है। ''सिनेमा आधुनिक विज्ञान का वह वरदानहै जो सस्ता मनोरंजन देता है। दिन भर की दौड़–धूप, मेहनत–मशक्कत से परेशान इन्सान शाम को दिलबस्तगी का कोई सामान खोजता है। गरीब देश है। उसे ऐसा ही मनोरंजन चाहिए जो कम से कम पैसे

Social Research Foundation

में प्राप्त हो सके, सब जगह प्राप्त हो सके और जिसके अपनाने में अंगुली भी नहीं उठाई जाए। सिनेमा इन सभी शर्तों को पूरा करता है। इसीलिए यह इतना जनप्रिय है। हम सिनेमा की उपेक्षा नहीं कर सकते।''

भाषा की श्रेणी भी संगीत को द्विगुणित करती है। बड़े–बड़े कलाकार घण्टों झूमते रहने के बाद भी चमत्कार नहीं कर पाते जो चलचित्र संगीत मात्र तीन–चार मिनटों में श्रोता के हृदय पर आधिपत्य जमाकर तृप्त कर देता है। बार–बार उक्त संगीत को सुनने को बाध्य करता है। ऐसा प्रतीत होता है कि मानव–जीवन की पूर्ण कहानी एक छोटीसी गीत रचना में भर गई हो। राग की परिभाषानुरूप ''रंजक जनचित्ताना'' को शत–प्रतिशत यह लोकप्रिय संगीत सार्थक करता है। चलचित्र संगीत समाज का भी दर्पण है। वर्तमान सामाजिक व्यवस्था सही रूप में समाज के उत्थान–पतन के साथ फिल्म संगीत में परिलक्षित होती है। यदि समाज पतन से उत्थन की ओर जा रहा है तो चित्रपट संगीत भी उसी ओर अग्रसर होता है।

चलचित्र संगीत ने संगीत के सभी पहलुओं को छुआ ही नहीं बल्कि उसे समेटे हुए है, यथा शास्त्रीय संगीत, लोक संगीत, गजल, भजन, गीत, कव्वाली आदि। सभी का स्वरूप दर्शन यहाँ होता है। रागों की जटिलता को चलचित्र संगीत ने अत्यन्त आसान बना दिया है। स्वर लय से सुसज्जित हो सकल जगत को आने में समाहित कर लिया हैं। शब्द और स्वर का ऐसा अलौकिक समन्वय कि मानो गीत हिंडोले ले रहे हैं और शिथिल भावों को स्फूर्ति प्रदान कर रहे हो।

Social Research Foundation

ऐसी संजीवनी जो क्षणभर में सम्पूर्ण प्राणी जगत को प्राणदान मिल जाए। उस संगीत का आधार और लक्ष्य, दोनों रजकता मात्र है।

यदा–कदा साहित्यिक शब्दों के अभाव में संगीत को ही अश्लील कहा गया, परन्तु उन अश्लील शब्दों का संयोग भी जन सामान्य के अत्यन्त निकट है। समाज में अनेक प्रकार के मान हैं। इस संगीत ने समाज के प्रत्येक स्तर का स्पर्श किया है। एक ओर अश्लील गीत (जिनकी संख्या कम है, नगण्य है) तो दूसरी ओर एक से एक भजन, वेदना से भरे प्रणय गीत, शिक्षाप्रद गीत, राष्ट्रीय गीत परन्तु समाज का प्रत्येक वर्ग उसे अपने में समेटे हुए है।[6]

प्योरलाल हिन्दुस्तानी संगीत के साथ–साथ पाश्चात्य संगीत के भी अच्छे ज्ञाता हैं। लक्ष्मी–प्यारे की जोड़ी के रूप में इन्हें क्रिकेट ने मिलाया। ''आज के फिल्म संगीत के आकाश की सुप्रसिद्ध जोड़ी लक्ष्मीकान्त और प्यारेलाल की दोस्ती संगीत से नहीं बल्कि क्रिकेट के खेल से हुई थी। उस समय लक्ष्मीकान्त दादर में फेमस स्टूडियों में काम करते थे और प्यारेलाल वहीं एक चाल में रहते थे। लंच के समय जब लक्ष्मीकान्त स्टूडियो से बाहर निकलते थे तब प्यारेलाल वहाँ अपने मित्रों के साथ क्रिकेट खेलते नजर आते थे। लक्ष्मीकान्त भी उनके साथ क्रिकेट खेलने पहुँच जाते थे। उस समय दोनों की उम्र मात्र दस–ग्यारह वर्ष थी, लेकिन प्यारेलाल उम्दा वायलिन वादक थे और लक्ष्मीकांत मेंडोलिन वादक।[7] इस संबंध में लक्ष्मीकान्त जी का कथन है– ''ह्रदयनाथ मंगेशकर ने योजना बनायी बच्चों के आर्केस्ट्रा की, मैंने एक हमउम्र बालक को एक कार्यक्रम में वायलिन बजाते सुना था और उनका प्रशंसक बन गया था और पता चला वह कैडल रोड पर क्रिकेट खेलने आता है, ढूंढते–ढूंढते वहां पहुँचे और उसे भी

Social Research Foundation

'सुरेल कला केन्द्र' में शामिल कर लिया। यह और कोई नहीं प्यारेलाल था। बस तभी से हमारा साथ हो गया। हम दोनों आर्केस्ट्रा में बजाने लगे।''[8]

After work was over, I often strolled by the sea nearby. There was building called 'Ahmed Mansion' there where I knew Pandit Ramprasadji. Pyare's father used to stay. Pyare and I used to meet each other at the recordings. W preferred each other's company and used to hang around together. There was no historic first meeting. We were just two young souls, musically inclined. There was Hridaynath, Lata Ji brother, her sister Usha Mangeshkar, Pyar's brother Ganesh Mayekar, who was a sister-player and others. We decided to form a group. And so, Surel Kala Kendra was born and we began giving shows. Pyare and I also loved to go for walks because that's when we composed tunes of our own.

उस जमाने में सभी (एक्टर, यूजिक–डायरेक्टर आदि) नौकरी करते थे जिसकी मासिक आय सौ से एक सौ पच्चीस होती थी। 1952 में हम भी रणजीत स्टूडियों में नौकरी करते थे। प्यारेलाल आज एक कुशल एरेन्जर है। प्यारेलाल के अनुसार, एक जमाना था जब सभी म्यूजिक एरेन्जर क्रिश्चियन होते थे और आज एक भी क्रिश्चियन म्यूजिक एरेन्जर नहीं है लगभग 1949–1950 में प्यारेलाल के पिता ने कहा था कि भविष्य, में इन्स्ट्रूमेन्ट आगे दो सप्तक और नीचे दो सप्तक जाएगा जो आज सिन्थेसाइजर में देखने–सुनने को मिलता है।[10]

हिन्दी फिल्मी इतिहास में ऐसे अनगिनत उदाहरण हैं जिसके कारण फिल्में यादगार बन गई। घर आया मेरा परदेशी में एक सौ वादकों का ऑर्केस्ट्रा था। फिल्म 'हीरो' का ऑर्केस्ट्रा आज भी उल्लेखनीय है। 'हीरो' फिल्म के संगीत निर्देशक लक्ष्मीकांत प्यारेलाल

Sonal Research Foundation

एक अत्यन्त कुशल 'अरेंजर' है। उनके पिता पं. राम प्रसाद शर्मा स्वयं कुशल अरेंजर थे। इनके अतिरिक्त मोहम्मद शफी का नाम प्रमुख है। सितारवादक के रूप में अपना कैरियर आरम्भ करने वाले मो. शफी ने न्यू थिएटर्स में पंकज मलिक एवं आर.सी. बोराल के सहायक तथा गुलाम अली एवं नौशाद के साथ लगभग साठ फिल्मों में अरेंजर के रूप में कार्य किया। ''आर.सी. बोराल ने पहली बार ऑकेस्ट्रा का प्रयोग न्यू थियेटर्स की सफल एवं देवकी बोस की प्रथम हिन्दी फिल्म 'पूरन भगत' में किया। मीरा के भनों को आर.सी. बोराल ने अच्छे संगीत से सँवारा था। राम सिंह भी चौथे दशक के उत्तम अरेंजर थे। गोआनी अरेंजर्स ने काफी ख्याति अर्जित की चिक चॉकलेट और जॉनी गोम्स, सैबेस्टिन डी सूजा, फ्रेन्क फर्नेण्डिज, रॉबर्ट, चिक कोरिया, मार्टिन पिन्टो, सी फ्रान्को, अल्बर्ट डी, कोस्टा, आर्थश्र पैरिपेरा आदि।

सम्पूर्ण ऑर्केस्ट्रा तैयार करने में 'कंडक्टर' का कार्य भी बहुत महत्वपूर्ण है। रिकॉर्डिंग की उन्नत तकनीक, तकनीक का उचित प्रयोग, वाद्यों के मिश्रित ध्वनियों की संतुलित रिकॉर्डिंग, ध्वनि का उतार–चढ़ाव, ऊँचा–नीचापन का निर्धारण, अनेकानेक माईक्रोफोन का प्रयोग, बूथ की व्यवस्था (गायक–वादकों के लिए) आदि सूक्ष्म कार्य 'कंडक्टर' के निर्देशन में सम्पन्न होता है।[10]

संदर्भ

1. *डॉ. इन्दू शर्मा ''सौरभ'', कनिष्क पब्लिशर्स, नई दिल्ली, पृ. 53–54*
2. *तिवारी हरीश संगीतकार लक्ष्मीकांत प्यारेलाल, माधुरी, दिसम्बर, 1973, पृ. 25*

Social Research Foundation

3. *सीमा जौहरी : फिल्म संगीत निर्देशक रोशन व उनके समकालीन संगीतकार राधा पब्लिकेशन, दारियांगज, नई दिल्ली, पृ.146–147*
4. *लावण्य कीर्ति सिंह 'काव्या', लक्ष्मीकान्त प्यारेलाल : हिंदी चलचित्र जगत के सफलतम संगीत निर्देशकद्वय, भाग–1, कनिष्क पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली– 110 002*
5. *राग, पंकज, सचिन देव वर्मन, धुनों की यात्रा, पृ. 317*
6. *लक्ष्मीकान्त कीर्ति सिंह 'काव्या', हिंदी चलचित्र जगत के सफलतम संगीत निर्देशकद्वय, कनिष्क पब्लिकेशन, नई दिल्ली, भाग–1*
7. *लक्ष्मीकान्त प्यारेलाल, www.screenindia.com*
8. *लक्ष्मीप्यारे को क्रिकेट ने मिलाया, नई दुनिया, नगर प्रतिनिधि, 4 दिसम्बर, 1990*
9. *लक्ष्मीकान्त प्यारेलाल, चमत्कार छठी फिल्म का, माधुरी–22, अक्टूबर, 1976, पृ. 49*
10. *संगीत सुधा, डॉ. लावण्य कीर्ति सिंह 'काव्या' कनिष्क पब्लिकेशन, पृ. 151*

Social Research Foundation

Musical Instrument & Indian Film Industry
ISBN : 978-81-947902-6-6

भारतीय फ़िल्म जगत एवम् वाद्य संगीत

नीलम सैन
असिस्टेंट प्रोफेसर
संगीत विभाग,
राजस्थान विश्वविद्यालय,
जयपुर., राजस्थान, भारत

प्रस्तुत शोध–पत्र ह्रदय स्पर्शी भारतीय फिल्म जगत एवम् वाद्य संगीत से सम्बन्धित है भारतीय संगीत फिल्म जगत की धुरी है भारतीय फिल्मों के प्रदर्शन से समाज के हर पक्ष का चित्रांकन सम्भव है ये भारतीय फिल्में सीधे जन–साधारण पर अपना प्रभाव छोड़ती है। ललित कलाओं में श्रेष्ठ संगीत कला प्रमुख रूप से श्रेष्ठ है क्योंकि संगीत से मनुष्य अपनी भावनाओं की पुष्टि कर पाता है। भारतीय फिल्मों के जीवंत रूप को प्रकट करने में संगीत उपयोगी है और संगीत के अन्तर्गत वादन की प्रक्रिया और भी मनोहारी व रुचिकर हो जाती है। वादन के प्रयोग में बहुत सारे वाद्य यंत्र भारतीय फिल्मों के संगीत में प्रयुक्त होते हैं। फिल्मों के संगीत में अगर वाद्य यंत्र नहीं होंगे तो फिल्में निर्जीव प्रतीत होगी। भारतीय फिल्म जगत और वाद्य संगीत एक दूसरे के विकास में सदैव सहायक रहे हैं।

मुख्य शब्द : फिल्म जगत, भारतीय संगीत, वाद्य संगीत, वाद्य यंत्र, फिल्मी संगीत।

Social Research Foundation

ISBN : 978-81-947902-6-6

प्रस्तावना

सिनेमा के सौ वर्ष बीत चुके हैं। इसी बीच अनेक फिल्में बनी और नयी–नयी तकनीकें भी इस फिल्म जगत में आई, कहानी को लिखने वाले लेखक, (चलचित्र) फिल्म के डायरेक्टर, जो पूरी फिल्म को दिशा–निर्देशन देता है और तब कहानी फिल्म के रूप में सबके सामने आती हैं उसके पात्र (नायक–नायिका), गीत संगीत रचने वाले संगीतकार और उसे गाने वाले गायक–गायिका जिसके कारण फिल्म हिट होकर अनेक कीर्तिमान स्थापित करती है फिल्म के महत्वपूर्ण अंग उपरोक्त सभी है पर सबसे महत्वपूर्ण है संगीत जो पूरी फ़िल्म में प्राण डाल देता है। वास्तव में वाद्य और वो गुमशुदा (न्देवदह भ्मतव) जो सबको उस कहानी में जिन्दा रखती है और अपने आप को पर्दे के पीछे रख कर वादक कलाकार वो चाहे भारतीय वाद्य वादक हो या पाश्चात्य वाद्य वादक। वाद्य और वादक हमेशा विषयवस्तु से जोड़ने का काम करते है फिल्म से दर्शक, गीत से श्रोता चाहे संगीत एवं नाटक का कोई भी क्षेत्र हो इसलिए वाद्य संगीत और भारतीय फिल्म जगत के बारे यह विश्लेषणात्मक लेखन प्रस्तुत है।

साहित्यावलोकन

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और मनोरंजन हेतु लोक कला व ललित कलाओं को बनाया गया है इनमें फिल्म संगीत एक ऐसा माध्यम है जिसमें हम सभी ललित कलाओं का समावेश कर लेते हैं। फिल्म संगीत में शास्त्रीय व लोक संगीत का निचोड़ सुगम संगीत के रूप में कर लिया जाता है। फिल्म संगीत के माध्यम से कम समय में अधिक मधुर संगीत का रसास्वादन कर सकते हैं जो खुले रूप से आम श्रोता तक पहुँचता है। भारत के संगीत प्रेमी कलाकारों ने फिल्म

Social Research Foundation

ISBN : 978-81-947902-6-6

संगीत के माध्यम से जनमानस को गहरे सागर में स्नान कराकर कृतार्थ किया है।

भारतीय फिल्म संगीत का सम्पूर्ण वैभव, सारी सफलता संगीत के लय और उनके आकर्षण वाद्यों पर निर्भर करती है सभी व्यक्ति फिल्मी संगीत में प्रयुक्त वाद्यों की अधिकता, उनकी उपयोगिता, और सफलता से परिचित है क्योंकि गीत शुरू होने से पहले फिल्म के दृश्य को, भाव को बिना संवाद के और बिना दिखाए वाद्यों के द्वारा ही दर्शाया जाता है ये वाद्य मात्र फिल्म की सुन्दरता को ही नहीं बढ़ाते बल्कि लयकारी के साथ–साथ कथानक के भावों को विशेष रूप से स्पष्ट करते हैं सभी प्रकार के रस भावों को वाद्यों के माध्यम से सबका सफल प्रदर्शन करना वाद्यों का ही कार्य है। फिल्मी संगीत की प्रकृति बड़ी लचीली है। इसमें भी शास्त्रीयता का बड़ा अच्छा ज्ञान होना चाहिये भारतीय फिल्म संगीत में जितने भी संगीतकार हुये हैं उनमें शास्त्रीय संगीत का अच्छा ज्ञान कूट–कूट कर भरा है और साथ ही वाद्य यंत्रों की भी अच्छी जानकारी या ज्ञान वे रखते थे और ज्यादातर कलाकार वादक कलाकार ही रहे। जैसे नौशाद अली सितार के अच्छे ज्ञाता रहे और बजाते भी थे।

वाद्य की परिभाषा

वाद्य शब्द वद धातु से बना है और उसका अर्थ है जिसमें बुलवाया जा सके। अर्थात् जो यंत्र नाद उत्पन्न कर सकता है वह वाद्य है। यह वाद्य दृश्य है और उससे उत्पन्न नाद श्रव्य है। वाद्य का शाब्दिक अर्थ है – वादनीय अथवा बनाने योग्य यंत्र विशेष।[1]

संगीतात्मक ध्वनि तथा गति को प्रकट करने के उपकरण को वाद्य माना जाता है। वाद्य संगीत में संगीत के मूल तत्व स्वर

तथा लय के द्वारा बिना किसी अन्य कला की सहायता से श्रोताओं को मधुमती भूमिका तक ले जाकर उसमें घण्टों रमाये रखने की शक्ति है। यूं तो वाद्य का उपयोग गायन, वादन, और नृत्य के साथ तो प्राचीनकाल से ही हो रहा है। लेकिन आज वाद्य का स्वतन्त्र वादन काफी विकसित हो चुका है।

वाद्य के प्रकार

संगीत वाद्य यंत्रों को उनकी गुणवत्ता के आधार पर वगीकृत किया गया है –

1. तत् वाद्य– इस श्रेणी में वे वाद्य आते हैं जो उंगलियों की सहायता से बजाये जाते हैं तत् वाद्य कहलाते हैं। सितार, सरोद, सारंगी, खाल, सन्तूर, स्वरमण्डल, मेंडोलिन, इलेक्ट्रोनिक गिटार, वायलिन, रावणहत्था, श्री मण्डल।
2. अवनद्ध वाद्य– वे वाद्य जो खाल से निर्मित होते हैं– मृदंग, चंग, ढोलक, ढ़फ, खंजरी, दमामा, ढोल, नगाड़ा, तासा, मटकी, तबला, ड्रम, नाल, मृदंगम।
3. सुषिर वाद्य – सुषिर लोक वाद्य वे वाद्य हैं जिनमें स्वरों की उत्पत्ति फूंक द्वारा होती है, सुषिर वाद्य कहलाते हैं। तुरही, शहनाई, पियानो, पियानो एकार्डियन आदि।
4. घन वाद्य –घन लोककथा वे वाद्य जिनमें लकड़ी अथवा धातु को आपस में टकरा कर बजाया जाता है। घड़ियाल, थाल, और तसली चिम्पिया, ताल, झाँझ, मंजीरा, करताल, चिमटा, जन्तर, जल तरंग, काष्ठ तरंग, मुरचंग आदि।

Social Research Foundation

संगीत तथा वाद्य का परस्पर सम्बन्ध

संगीत में वाद्य यंत्रों का अति आवश्यक एवं महत्वपूर्ण स्थान है। दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। एक के बिना दूसरे में रसनिष्पत्ति असम्भव है। संगीत अंतर्मन की नैसर्गिक भावना है। वाद्य यंत्र उसके बाह्य प्रकटीकरण का सुन्दर माध्यम है। वाद्यों द्वारा स्वर तथा लयबद्ध रूप में उत्पन्न संगीत 'वादन' कहलाता है। आचार्य शारंगदेव वादन का महत्व बताते हुये कहते हैं –

''नृत्यं वाद्यानुंग प्रोक्तं गीतानुवृत्ति च''[3]

इस श्लोक में वादन को गायन के आधीन तथा नृत्य को वादन के अधीन बताया गया है।

भारतीय फिल्म जगत एवम् वाद्य संगीत का परस्पर सम्बन्ध

हिन्दी सिनेमा के वाद्य यंत्रों में भी उच्च कोटि की कलात्मकता होती है। वाद्य यंत्रों में अनेक प्रकार की मौलिक कल्पना तथा मिठास से श्रोता को मन्त्र–मुग्ध कर दिया जाता है। संगीत निर्देशकों ने भारतीय वाद्य यंत्रों के साथ–साथ विदेशी वाद्यों का भी कुशलतापूर्वक प्रयोग किया है।

फिल्मी गीतों में प्रयुक्त वाद्य यंत्र व उपयोगिता

1. मैंने रंग ली आज चुनरिया ''मिश्र पीलू राग में गाया गया है। यह गीत कहरवा ताल में मिलता है। इसमें प्रारम्भ में सितार का टुकड़ा बजाया गया है। साथ ही बाँसुरी का प्रयोग बहुत ही आकर्षक है।''[4]
2. पूछो ना कैसे मैंने रैन बिताई 'अहीर भैरव' तथा 'काफी' राग में निबद्ध इस गीत को 'तीन ताल' कहरवा के साथ गाया जाता है। पर्याप्त पार्श्व संगीत का प्रयोग हुआ है इसमें

Social Research Foundation

सारंगी का मोहक प्रयोग हुआ है।'' इत्यादि अनेक फिल्मी गीत हैं जिनमें वाद्य यंत्रों का प्रयोग होता ही है उसके बिना संगीत अधूरा है।

3. ''एक ऋतु आये, एक ऋतु जाये'' यह गीत कई रागों का मिश्रित सार है। पार्श्व संगीत में सारंगी, बाँसुरी, तथा सन्तूर का प्रयोग हुआ है तीनताल व कहरवा के साथ गाया जाता है।[5]

4. छम–छम–छम–छम रुत बरसे –कहरवा में निबद्ध यह गीत 'चारुकेशी' राग में है। गीत के भावों को सार्थक करने में यह धुन समर्थ रही हैं पार्श्व संगीत में सरोद का मन्द्र सप्तक में बहुत ही चमत्कारपूर्ण व रस व्यंजक रहा है। इसी प्रकार मितवा बोले मीठे नैन तथा बीती न बिताई रैना बिरहा की जाई रैना और बोले रे पपीहरा नित धन बरसे, अखियाँ तरसन लागी, तुम नाचो रस बरसे, पवन दीवानी न माने, मोहे पनघट पे नंद लाल, तू है मेरा देवता, कैसे दिन बीते, गरजत बरसत सावन आयो है, आदि फिल्मी गीतों में सरोद, सितार, तबला, हारमोनियम, बाँसुरी, वीणा, पियानो, गिटार, ढोलक, ढफ, घुंघरू आदि वाद्य यंत्र बजाये गये हैं जो भारतीय फिल्म संगीत को मनमोहक बना देते हैं।

आधुनिक भारतीय संगीत में अनेक पाश्चात्य वाद्यों का प्रचार बढ़ रहा है जिनमें से कुछ वादन तो भारतीय शास्त्रीय संगीत में प्रमुखता गृहण कर चुके हैं जैसे वॉयलिन, हारमोनियम, गिटार आदि अन्य कई ऐसे वाद्य हैं जिनका प्रयोग वृन्दवादन, सिने संगीत, सुगम संगीत आदि में किया जाता है। वृन्द वादन की परम्परा को एक नया

Social Research Foundation

मोड़ आधुनिक काल में पाश्चात्य सम्पर्क से मिला है। वर्तमान आर्केस्ट्रा पश्चिम से प्रेरणा गृहण करके उनकी तकनीक और वाद्य यंत्रों के प्रयोग से निरन्तर समृद्ध हो रहा है। सिने–संगीत इसका सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। आधुनिक काल में नृत्य पर पाश्चात्य बैले व रंगमंच का प्रभाव स्पष्ट दिखाई पड़ता है। आज के नये संगीतकारों में पाश्चात्य संगीत का प्रभाव दृष्टिगत होता है। गीत की धुन और उसकी लय दोनों में ही पाश्चात्य रंग दिखाई देता है। आज भारतीय फ़िल्मों में पश्चिमी संगीत बीटल, पॉप, रैप आदि का बहुत बोलबाला है। तथा वाद्य यंत्र क्लारनेट, ट्रम्पेट, ट्रोबोन्स आदि का उपयोग हो रहा है।

अस्सी के दशक में डिस्को, पॉप, ब्रेक डांस, रॉक आदि विदेशी संगीत शैलियों का हमारे फिल्मी गीतों में खूब प्रयोग हुआ। गीतों की रिकॉर्डिंग में वाद्यों की ध्वनियों को उभारने वाले प्रयोगों पर संगीत–निर्देशकों ने सारी ताकत लगा दी। सलिल चौधरी, बप्पी लहरी, अनु मलिक, कल्याण जी आनन्द जी, जतिन–ललित, ए.आर. रहमान, आनन्द राज आनन्द, राजेश रोशन, उत्तम सिंह, संजीव दर्शन, ईस्माइल दरबार आदि सभी संगीतकारों ने फिल्मी गीतों में दिन–प्रतिदिन नवीन–प्रयोग करके संगीत में विविधता व सृजनता लाकर अमूल्य योगदान दिया है।

निष्कर्ष

हिन्दी फ़िल्म जगत के सौ वर्ष पूर्ण हो चुके हैं। मानव जीवन के प्रत्येक पहलू से जुड़ा हुआ भारतीय फ़िल्म संगीत के प्रभाव से पूरा विश्व प्रभावित है और फ़िल्म संगीत से हमारा भारतीय संगीत आगे बढ़ सका है। इसलिए म्यूजिक डायरेक्टर्स को अपना योगदान एक

Social Research Foundation

अच्छे फ़िल्म के म्यूजिक में वाद्यों का प्रयोग करके अच्छी तरह से करना चाहिए ताकि हिन्दी फ़िल्म संगीत में वाद्य की अहमियत का पता लगाया जा सके क्योंकि बिना वाद्य के किसी अच्छे फिल्मी म्यूजिक की कल्पना करना भी असम्भव है। इसलिए भारतीय फिल्मी संगीत एवम् वाद्य एक दूसरे के पूरक हैं। वाद्य के उपयोग से फिल्मी संगीत मनमोहक रूप प्राप्त करता है और वाद्य संगीत से ही भारतीय फिल्मी संगीत पूरे विश्व में सम्मान प्राप्त कर रहा है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *सौरभ, डॉ. इन्दु वर्मा, भारतीय फिल्म संगीत में ताल समन्वय, कनिष्क पब्लिशर्स, प्रथम संस्करण, 2006, पृ.सं.46.*
2. *बसन्त, संगीत विशारद, संगीत कार्यालय, हाथरस, उन्नीसवाँ संस्करण, दिसम्बर 1991, पृ.सं.424.*
3. *पाण्डेय, डॉ. रजनी, जयपुर की चित्रकला में संगीत वाद्य यंत्र, पत्रिका प्रकाशन, संस्करण जनवरी 2011, पृ.सं.90.*
4. *सौरभ, डॉ. इन्दू शर्मा, भारतीय फिल्म संगीत में ताल समन्वय, कनिष्क पब्लिशर्स, प्रथम संस्करण 2006, पृ.सं.123.*
5. *वही, पृ.सं.121.*

Social Research Foundation